UNIVERSAL LIBRARY
OU_186729
UNIVERSAL LIBRARY

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

राधास्वामी मत उपदेश

परम गुरु हुज़ूर महाराज

— प्रकाशक —

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत् १४३
सन् १९६० ई०

(*All Rights Reserved*)

First Edition 1948 1000
Second Edition 1960 1000

PRINTED BY BABU RAM JADOUN, M.A.
AT THE DAYALBAGH PRESS, DAYALBAGH, AGRA

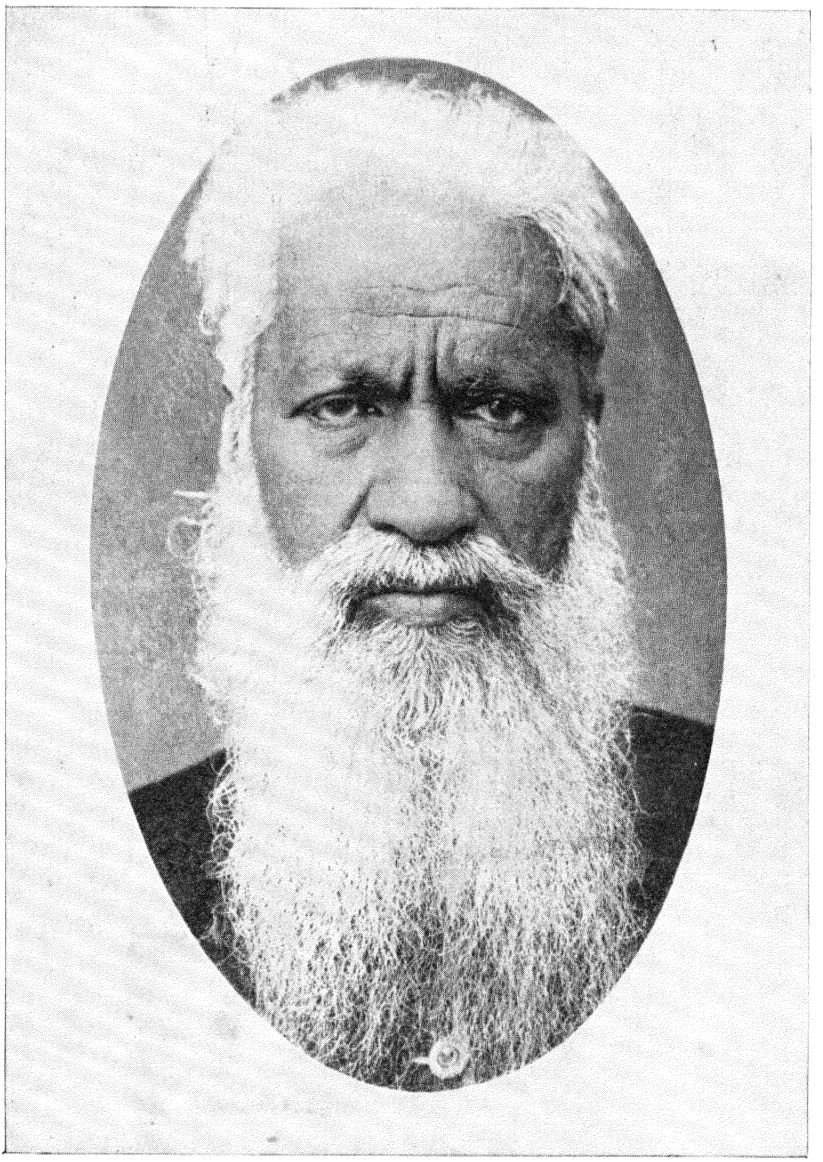

परम गुरु हुज़ूर महाराज

निवेदन

राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य परम गुरु हुज़ूर महाराज का जन्म १४ मार्च सन् १८२९ ई० को पीपलमंडी आगरा में हुआ था। सन् १८४७ ई० में उन्होंने डाक विभाग में सर्विस शुरू की और सन् १८८१ में वे पोस्टमास्टर जनरल नियुक्त हुए। इस ऊँचे पद पर नियुक्त होने वाले वे पहले हिन्दुस्तानी थे। ८ जून सन् १८७८ ई० को परम गुरु हुज़ूर स्वामी जी महाराज के गुप्त होने पर वे राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य हुए। सन् १८८७ ई० में उन्होंने सर्विस छोड़ दी। परम गुरु हुज़ूर महाराज ने ६ दिसम्बर सन् १८९८ ई० को गुप्त होने मौज फ़रमाई।

परम गुरु हुज़ूर महाराज ने अपने समय में राधास्वामी मत पर बहुत सी पुस्तकें लिखने की मौज फ़रमाई जिनमें सन्त मत व राधास्वामी मत के सिद्धान्तों पर पूरी तरह प्रकाश डाला गया है। 'प्रेम बानी' में, जो चार भागों में प्रकाशित हुई है, उनके लिखे शब्द हैं और उनके बचन व गद्य लेख 'प्रेम पत्र' में, जिसके ६ भाग हैं, और कुछ छोटी पुस्तकों में शामिल हैं। 'राधास्वामी मत उपदेश' उन्हीं छोटी पुस्तकों में से एक है और प्रेमपत्र भाग ३ में भी शामिल है।

इस पुस्तक को राधास्वामी सतसंग सभा दयालबाग़ ने प्रथम बार दिसंबर १९४८ में प्रकाशित किया था। अब उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाता है।

गुरुसरन दास मेहता
प्रेज़ीडेन्ट
राधास्वामी सतसंग सभा।

दयालबाग़ (आगरा)
७ मार्च १९६० ई०

सूचीपत्र

भाग	विषय	पृष्ठ
भाग	१—सच्चे खोजी और प्रेमी का हाल	१-४
भाग	२—माया और उसके ग़िलाफ़ों का हाल	५-८
भाग	३—अपने वक्त़ के सतगुरु की ज़रूरत और उनके सतसंग का फ़ायदा	८-१०
भाग	४—वर्णन भेद जीवों की समझ और अधिकार का	१०-१४
भाग	५—कुल मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा, और फ़ायदा उनके चरनों में भाव के साथ प्रीति और प्रतीति करने का और बयान उन हुक्मों का जो उन्होंने ज़बान मुबारक से फ़रमाए	१५-१७
भाग	६—वर्णन हाल राधास्वामी दयाल की दया का वास्ते उद्धार जीवों के और जारी करने उपदेश के आम तौर पर	१८-१६
भाग	७—वर्णन ज़ाहिरी आदाब और क़ायदा भक्ती का राधास्वामी दयाल के चरनों में	१६-२०
भाग	८—वर्णन हाल उपदेशकर्त्ताओं का और हिदायत मुनासिब उनके वास्ते	२०-२४
भाग	६—हिदायत उपदेशियों को :—	२४-३१
	क़िस्म पहली—साधू और सतसंगियों के उपदेशियों को	२४-२६
	क़िस्म दूसरी—नसीहत संतों के उपदेशियों को	२६-२६
	क़िस्म तीसरी—हिदायत कुल उपदेशी यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को	३०-३१
भाग १०	—क़िस्म पहली—जवाब बाज़ सवालों और संदेहों का जो कि प्रेमी अभ्यासियों के मन में निस्बत बरताव भक्ति के सतगुरु स्वरूप और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में अक्सर पैदा होते हैं	३१-३४

क़िस्म दूसरी—जवाब बाज़ तर्कों का जो कोई कोई सतसंगी और दुनिया के लोग निस्बत बरतावे समाध और तसवीर राधास्वामी महाराज के करते हैं ३५-३८

क़िस्म तीसरी—बाज़े सतसंगियों की अनजानता की बोल चाल और समझौती का वर्णन और उनको नसीहत ३८-४३

भाग ११—वर्णन कैफ़ियत कुल मालिक के औतार स्वरूप की और उसकी ज़रूरत ४४-४८

राधास्वामी मत उपदेश

वर्णन हाल सच्चे खोजी और परमार्थी और भी माया और उसकी रचना और घेर का और ज़रूरत सतगुरु और उनके सतसंग की और महिमा कुल मालिक राधास्वामी दयाल की जिनके चरनों में सबको प्रीति और प्रतीति लानी चाहिए और बिना जिनकी मेहर और दया के किसी का कुछ काम नहीं बन सकता। और हाल उपदेश-कर्त्ताओं[1] का और नसीहत उनको और कुल उपदेशियों यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को।

भाग पहला

सच्चे खोजी और प्रेमी का हाल

१—सच्चे परमार्थ की कमाई दुरुस्ती से जब बन पड़ेगी, जब सच्चा दर्द यानी प्रेम सच्चे मालिक से मिलने का दिल में पैदा होगा। और यह दर्द या प्रेम दो सूरतों में पैदा हो सकता है।

२—पहली सूरत यह है कि दुनिया के हाल पर नज़र करके और उसकी और उसके सब सामान की नाशमानता देखकर दिल उसकी तरफ़ से उदास हो जावे और खोज करे कि अमर स्थान और अमर सुख कहाँ है और कैसे मिले। और जब तहक़ीक़ात करके मालूम होवे

१—उपदेश देने वालों।

कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल का धाम, जो ऊँचे से ऊँचा और गहरे से गहरा है, अमर और अजर है और वहीं पूरन आनन्द मिल सकता है, और वही निर्माया[1] यानी निर्मल चैतन्य देश है और उसके नीचे जितने देश हैं, उन सबमें शुद्ध यानी लतीफ़ और सूक्ष्म और मलीन यानी कसीफ़ और स्थूल माया व्यापक है और निर्मल चैतन्य का ग़िलाफ़ हो रही है, इन देशों में पूरन आनन्द नहीं है, दर्जे बदर्जे ऊँचे की तरफ़ आनन्द बढ़ता गया है और दुख और क्लेश कम होता गया है और मलीन माया के देश में सुख बहुत कम और दुख विशेष है और कुल माया के देश में अबेर सबेर जनम मरन का चक्कर भी चल रहा है, यानी कुछ अरसे बाद ग़िलाफ़ (जिनको देह कहते हैं) बदलते रहते हैं, यह बात समझ कर कुल मालिक के मिलने का और उसके धाम में पहुँचने का शौक़ दिल में पैदा हो जावे।

३–दूसरी सूरत यह है कि कोई इस शख़्स को महिमा कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी और उनके धाम की, जो कि अविनाशी और सर्व आनंद और प्रेम का भंडार है, सुनावे और इस दुनिया की नाशमानता और इसके सामान के तुच्छ और दुखदाई होने का हाल समझावे और जुगत इस माया देश को छोड़कर अपने निज घर में जाने की बयान करे, और इस हाल को सुन कर मन इस दुनिया से उदास और बरदाश्ता[2] होकर घर की तरफ़ चलने और अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल से मिलने का जतन करने का इरादा करे।

४–ऐसे खोजी को तलाश संत सतगुरु या साध गुरू की, जो कि कुल भेद कुल मालिक से और निज घर और उसके रास्ते से वाक़िफ़[3] हैं और जुगत चलने की समझा कर उसकी कार्रवाई करा सकते हैं, ज़रूर करनी पड़ेगी, क्योंकि और किसी जगह या किसी मत में या विद्यावान् और बुद्धिमानों के बचन से उसको तसल्ली हरगिज़ नहीं आवेगी।

५–ऐसे शौक़ीन और खोजी की हालत ऐसी होगी कि जैसे कोई

१—माया से रहित। २—निराश व दुखी। ३—जानकार।

बालक अपने माँ बाप से बिछुड़ कर किसी ग़ैर देश और ग़ैर आदमियों में जा पड़ता है और वहाँ उसको किसी तरह से चैन नहीं आता, चाहे कैसी ख़ातिरदारी उसकी की जावे, और माँ बाप के बियोग[1] का दर्द सताता रहता है और उनसे मिलने के वास्ते तड़प और बेकली मन में रहती है।

६—जब ऐसा खोजी तलाश करके संत सतगुरु या साध गुरू के सन्मुख आवेगा, उसको, उनके बचन सुनते ही और दर्शन करते ही, निहायत प्रेम उनके चरनों में पैदा होगा। और उनके बचन, जो सच्चे माँ बाप यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके धाम की महिमा से भरे हुए होंगे और रास्ते का भेद और चलने की जुगत का उनमें बराबर ज़िक्र होगा, उसको निहायत प्यारे लगेंगे, क्योंकि उसके दिल में फ़ौरन् यक़ीन हो जावेगा कि वे ज़रूर एक दिन उसको निज धाम में पहुँचा कर सच्चे मालिक से मिलावेंगे।

७—ऐसे खोजी के मन में संसार और उसके सामान और कुटुम्ब परिवार की तरफ़ से किसी क़दर वैराग्य खोज की हालत में पैदा हो जावेगा। और जब संत सतगुरु या साधगुरू के बचन चित्त देकर सुनेगा, तब वह वैराग्य तेज़ और क़ायम हो जावेगा और अभिलाषा[2] दुनिया की तरफ़ से हटती और कुल मालिक के चरनों में पहुँचने की दिन दिन बढ़ती जावेगी।

८—ऐसा खोजी संत सतगुरु के बचनों को सुनकर और उनके मुआफ़िक़ अपनी और दुनिया की हालत की जाँच करके फ़ौरन् उनके चरनों में प्रतीत लावेगा और जब उनकी जुगत का कोई दिन अभ्यास करके अपनी हालत अंतर में बदलती हुई देखेगा, तब दिन दिन प्रीति उनके चरनों में बढ़ाता जावेगा, और तन, मन, धन से उमंग के साथ सेवा करेगा और शौक़ के साथ सतसंग उनका, जोकि उसके अंतर अभ्यास में मदद देने वाला है, जारी रक्खेगा।

१—जुदाई। २—इच्छा।

९—जगत के जीव और भी विद्यावान् और बुद्धिमान् असल में अजान हैं, उनको सच्चे मालिक और उसके धाम की और उससे मिलने की जुगत की बिलकुल ख़बर नहीं है। रास्ते में आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म में अटक रहे हैं और उसका भी भेद पूरा पूरा नहीं जानते और मिलने की जुगत ऐसी कि जिसका अभ्यास सब कोई कर सके, इनके पास नहीं है। पर यह सब संत मत का हाल सुनकर अपनी मूर्खता से उसकी निंदा करते हैं और संतों पर तान मारते हैं और आप तीर्थ, व्रत और मूरत वग़ैरह में भरम रहे हैं। सच्चा खोजी ऐसे लोगों की निंदा और तान पर ज़रा भी तवज्जह नहीं करेगा, क्योंकि जब उसने थोड़े दिन सतसंग करके संत मत को बख़ूबी समझ लिया है, तो उसको सब मतों का हाल और उनका ओछापन ज़ाहिर हो जावेगा और उन लोगों के भरमाने और भुलाने से नहीं भरमेगा, बल्कि उनको नादान और अभागी समझ कर उनसे परमार्थी मेल नहीं रक्खेगा।

१०—दुनिया के भोग बिलास और नामवरी वग़ैरह की चाह उसके दिल में बहुत कम हो जावेगी या बिलकुल नहीं रहेगी, क्योंकि उसको कोई दिन सतसंग और अंतरी अभ्यास करके साफ़ मालूम हो जावेगा कि सब चीज़ें रास्ते में अटकाने वाली और निज घर से हटाने वाली हैं। वह किसी के भरमाने और उन चीज़ों का लोभ दिलाने से नहीं भरमेगा और अपनी भक्ति से नहीं डिगेगा।

११—ऐसे खोजी भक्त के मन में दिन दिन चाव कुल मालिक के दर्शन और उसके धाम में पहुँचने का बढ़ता जावेगा और जिस क़दर कि नित्य अभ्यास करके उसको अंतर में रस मिलता जावेगा, उसी क़दर उसकी प्रीति प्रतीति चरनों में मज़बूत होती जावेगी। और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया उस पर दिन दिन बढ़ती जावेगी और अंतर में उसको परचे मिलते जावेंगे। और इस तरह कमाई करके वह एक दिन माया के घेर के पार होकर और धुर धाम में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा।

भाग दूसरा

माया और उसके ग़िलाफ़ों का हाल

१२—मालूम होवे कि इस देश में चैतन्य की धार यानी सुरत माया के ग़िलाफ़ों में गुप्त होकर कार्रवाई मन और इंद्रियों के वसीले से कर रही है और इन ग़िलाफ़ों के संग अपनपौ[1] बाँध कर और बाहर से जड़ पदार्थों में मन लगाकर अनेक तरह के दुख सुख सह रही है। सो जब तक इन ग़िलाफ़ों से किसी क़दर छुटकारा नहीं होगा, तब तक दुख सुख और जनम मरन के चक्कर से बचाव नहीं हो सकता। और इन ग़िलाफ़ों से छूटने की जुगत सिर्फ़ संत यानी राधास्वामी मत में आसान तरीक़े से खोलकर कही है। उसकी कमाई से यह जीव अपना आहिस्ता आहिस्ता छुटकारा होता हुआ आप देख सकता है और उसी क़दर अपना दुख सुख से बचाव भी परख सकता है, और किसी तरकीब से यह फ़ायदा पूरा पूरा और आसानी के साथ, बग़ैर घरबार और रोज़गार के छोड़ने के, हासिल नहीं हो सकता। और राधास्वामी मत में किसी का घरबार और रोज़गार छुड़ाया नहीं जाता। और जो जुगत कि बताई जाती है ऐसी भारी है कि उसके अभ्यास करने से सहज में काम बन सकता है, लेकिन थोड़ा सच्चा शौक़ और प्रेम दरकार[2] है। फिर अभ्यास करके वही प्रेम दिन दिन बढ़ता जावेगा और एक दिन पूरा काम बना कर छोड़ेगा।

१३—यह बात सच्चे परमार्थियों को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि इस दुनिया में दो पदार्थ हैं, एक चैतन्य और दूसरा जड़। चैतन्य वही सुरत की धार है कि जो इस देश में कुल रचना की सम्हाल कर रही है और जड़ पदार्थ की प्रेरक है। बग़ैर उसके जड़ पदार्थ कुछ काम नहीं दे सकता। यही चैतन्य धार सत्य और ज्ञान और आनन्द स्वरूप है और जड़, बरख़िलाफ़ इसके, असत्य और तम[3] और दुख रूप है, यानी इसका रूप रंग सुरत चैतन्य

१—अपनापन। २—ज़रूरी। ३—अंधकार।

की सत्ता[1] से क़ायम है, और जब उसकी सत्ता खिंच जावे, तब उसके रूप रंग का अभाव[2] हो जाता है।

१४–यह समझौती लेकर कुल सच्चे परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि जड़ पदार्थों से आहिस्ता आहिस्ता अपना नाता तोड़ते जावें, या रिश्ता ढीला करते जावें और विशेष से विशेष चैतन्य से अपना मेल बढ़ाते जावें, तो दिन दिन आनन्द और सच्चा ज्ञान बढ़ता जावेगा और दुख और भूल और भर्म यानी तम घटता जावेगा। और यह कार्रवाई दुरुस्ती और आसानी के साथ सिर्फ़ सुरत शब्द मार्ग की कमाई से हो सकती है।

क्योंकि और मतों में चलने और चढ़ने की आसान जुगत जारी नहीं हैं, वे सब या तो बाहर जड़ निशानों (जैसे तीर्थ, मूरत वग़ैरह) में अटक रहे हैं या चैतन्य की विद्या बुद्धि से समझौती लेकर और अपने तईं[3] वही रूप समझ कर (यानी समान[4] और विशेष चैतन्य का भेद न करके) जहाँ के तहाँ बैठ रहे हैं, इस सबब से उनकी निवृत्ति[5] माया के घेर और देहियों के दुख सुख और जनम मरन से मुमकिन नहीं है।

१५–जिस क़दर ग़िलाफ़ यानी परदे सुरत चैतन्य की धार पर, निर्मल चैतन्य देश से उतार के समय, चढ़े हैं, उनका भेद मुफ़स्सिल[6] राधास्वामी मत में बयान किया गया है। और मतों में यह भेद साफ़ तौर पर बिलकुल ज़ाहिर नहीं किया है। और सबब उसका यही है कि उनमें सुरत के चलने और चढ़ने और निज धाम में पहुँचने का बिलकुल ज़िक्र नहीं है। चैतन्य को सर्वव्यापक मान कर, जहाँ के तहाँ उसकी समझौती (बजाय अभ्यास करने के) विद्या बुद्धि की मदद से हासिल करके तृप्त हो गये, यानी बुंद चैतन्य को पिंड में ही सिंध रूप मान कर निश्चिन्त हो गये।

१६–ग़िलाफ़ तीन क़िस्म के हैं—पहले दर्जे की रचना में रूहानी

१—हस्ती। २—नाश। ३—अपने तईं—अपने आपको। ४—सामान्य, साधारण। ५—छुटकारा। ६—पूरी तरह से।

ग़िलाफ़, जहाँ कि चैतन्य ही चैतन्य है और माया नहीं है; दूसरे दर्जे में शुद्ध माया के मसाले के ग़िलाफ़, जहाँ ब्रह्म सृष्टि है और तीसरे दर्जे में मलीन माया के मसाले के ग़िलाफ़, जहाँ कि देवता और मनुष्य और चार खान की रचना है। और फिर हर दर्जे में ग़िलाफ़ों की तीन तीन क़िस्में हैं, स्थूल, सूक्ष्म और कारण, यानी एक दर्जे का स्थूल ग़िलाफ़ नीचे के दर्जे के कारण ग़िलाफ़ से भी ज़्यादा सूक्ष्म है। और बाक़ी का हाल इसी तरह समझ लेना चाहिये।

१७—जब तक कि सुरत ग़िलाफ़ों में बरत रही है, तब तक उसकी भक्ति मालिक के चरनों में भेद भक्ति कहलाती है, यानी सेवक और स्वामी और प्रेमी और प्रीतम, यानी आशिक़ और माशूक़, का भाव क़ायम रहता है, और जब धुर पद यानी बेग़िलाफ़ मुक़ाम में सुरत पहुँचे, तब अभेद भक्ति, जिसको सच्चा और पूरा ज्ञान कहना चाहिये, कहलाती है। और इस जगह पर प्रेमी को संत मत में ऐसी ताक़त हासिल हो जाती है कि जब चाहे अपने प्रीतम से मिल जावे और जब चाहे जब न्यारा होकर उसके दर्शन का आनंद लेवे। यह स्थान असली अरूप और अरंग और अनाम पद का है, बाक़ी नीचे के दर्जों में जहाँ कहीं जिस किसी ने अनाम और अरूप पद थापा[1] है वह असली अरूप और अनाम और अरंग नहीं है। इस सबब से और मत वालों ने धोखा खाया, क्योंकि हर दर्जे में हर एक स्थान पर रूप और अरूप और लोक और अलोक मौजूद हैं और दोनों मिलकर रचना की सम्हाल कर रहे हैं।

१८—चैतन्य बेग़िलाफ़ अपने में आप मगन रहता है और जहाँ कि ग़िलाफ़ में है, वहाँ वह औज़ार यानी इन्द्रियों के वसीले[2] से बाहर की कार्रवाई करता है और भी अपने से विशेष चैतन्य का रस और आनंद लेता है। लेकिन ग़िलाफ़ का संग करके यानी मेल के सबब से, जो दुख सुख लाज़िमी हैं, उनका भी भोग करता है। और जब वह ग़िलाफ़ पुराना और बेकार हो जाता है, तब उसको छोड़कर दूसरा ग़िलाफ़

१—ठहराया है। २—ज़रिये।

धारण करता है। इस सबब से जनम मरन और दुख सुख का चक्कर हमेशा जारी रहता है।

यह कैफ़ियत[1] सिर्फ़ माया देश में है, यानी रचना के दूसरे और तीसरे दर्जे में वाक़ा होती है। अव्वल दर्जे में जहाँ कि रूहानी ग़िलाफ़ हैं, कभी तग़ैय्युर[2] और तबद्दुल (अदल बदल) नहीं होता। और जोकि चैतन्य आनन्द स्वरूप है, इस वास्ते उसके ग़िलाफ़ भी आनन्द रूप हैं। इस वास्ते संत फ़रमाते हैं कि जैसे बने तैसे माया के घेर के पार, दयाल देश यानी अव्वल दर्जे में जाना चाहिए। तब अमर और पूरन आनन्द प्राप्त होगा।

भाग तीसरा

अपने वक़्त के सतगुरु की ज़रूरत और उनके सतसंग का फ़ायदा

१९—संत अथवा राधास्वामी मत में वक्त़ के सतगुरु की निहायत ज़रूरत है, क्योंकि बग़ैर उनके मिलने के भेद कुल मालिक और रास्ते का और जुगत चलने की और हाल उन संजमों का, जिनकी निगहदाश्त[3] प्रेमी अभ्यासी को ज़रूर है, मालूम नहीं हो सकता। यह भेद और हाल वही जानता है कि जो अपने घट में रास्ता तै करके धुर मुक़ाम तक या किसी रास्ते के स्थान तक पहुँचा है, या थोड़ा बहुत वह शख़्स जानेगा जिसने पूरे गुरू से मिल कर कोई दिन उनका सतसंग किया है और उनसे उपदेश लेकर अभ्यास कर रहा है। सिवाय इन तीन के—(१) संत सतगुरु और (२) साध गुरू और (३) पूरे गुरू का सच्चा सतसंगी—और कोई यह भेद नहीं जान सकता। इस वास्ते जिस किसी के दिल में सच्चे मालिक का खोज और उसके मिलने का शौक़

१—हालत। २—परिवर्तन। ३—जिन पर अमल करना।

पैदा हुआ है, जब तक इन तीनों में से कोई नहीं मिलेगा, तब तक उसको शान्ति नहीं आवेगी और न उसका रास्ता चलना शुरू होगा।

२०—जब खोजी प्रेमी ऐसे गुरू का सतसंग करेगा, तब उसको सच्चा हाल इस रचना का मालूम पड़ेगा और यह कि किस में उसको सच्ची प्रीति करनी चाहिए और कहाँ कहाँ उसका मन बेफ़ायदा बँध रहा है और कैसे उसका छुटकारा सहज में हो सकता है। और जो सुख और रस यहाँ के भोगों में हैं, वह तुच्छ और नाशमान हैं, और परम सुख और परम आनन्द का भंडार अपने घट में मौजूद है, पर जुगती की कमाई से आहिस्ता आहिस्ता मिल सकता है। और कुल मालिक राधास्वामी दयाल का तख़्त भी घट में मौजूद है, और किस तरह थोड़ा बहुत उनका जल्वा[1] अन्तर में नज़र आ सकता है और कैसे उनकी मेहर और दया वास्ते तै करने रास्ता और प्राप्ति आनन्द और उसकी दिन दिन तरक़्क़ी के हासिल हो सकती है।

२१—सच्चे मालिक के चरनों में सच्ची प्रीति और प्रतीति सिर्फ़ सतगुरु के ही संग से पैदा हो सकती है और दिन दिन उसकी तरक़्क़ी उनकी मेहर और दया और जुगती की कमाई से मुमकिन है। और संसार और उसके भोगों से सच्चे वैराग्य का दिल में पैदा होना और उसकी तरक़्क़ी भी सतगुरु ही के संग से होवेगी। और तरह से जो किसी के चित्त में किसी वक़्त थोड़ा बहुत वैराग्य पैदा भी हुआ, तो वह क़ायम नहीं रहेगा और न उसकी तरक़्क़ी होगी।

२२—सच्चे मालिक की मौजूदगी और उसके हर वक़्त हाज़िर नाज़िर होने का यक़ीन भी संत सतगुरु ही के संग से हासिल होगा और उनकी दया और जुगती की कमाई से वही यक़ीन बढ़ता जावेगा, और एक दिन पूरे दर्जे तक पहुँचा देगा। ऐसा सच्चा और पूरा यक़ीन और किसी के संग से, या पोथियाँ पढ़कर, हासिल नहीं हो सकता।

१—प्रकाश।

२३–संतों की जुगती की कमाई भी सतगुरु ही के संग से दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगी और, जब तक कि काम पूरा न बने, वह अभ्यास जारी रहेगा। और किसी तरह सुरत शब्द का अभ्यास बन पड़ना दुरुस्ती से और तरक़्क़ी के साथ जारी रहना और रोज़ बरोज़ उसका फ़ायदा नज़र आना मुमकिन नहीं है, क्योंकि काल और कर्म और माया और उसके भोग बड़े ज़बरदस्त हैं, कभी न कभी अभ्यास में विघ्न डाल कर या भर्म उठाकर उसको छुड़वा देंगे या अभ्यासी को ललचा कर भोगों में या मान बड़ाई में फँसा कर उसका रास्ता चलने का रोक देंगे। जिस किसी के सिर पर पूरे गुरू का पंजा[1] रहे, उससे यह काम अख़ीर तक दुरुस्त बनता चला जावेगा, नहीं तो थोड़े दिन अभ्यास करके और फिर किसी न किसी चक्कर में पड़ कर और रास्ते में थक कर रह जावेगा।

२४–शब्द की महिमा और सुरत शब्द मार्ग की क़दर भी जैसी कि चाहिए सतगुरु ही के संग से आवेगी। और वैसे तो हर एक मत में शब्द की थोड़ी बहुत महिमा करी है, पर भेद रास्ते का और जुगत उसके अभ्यास की चढ़ाई के साथ किसी मत में नहीं पाई जाती।

२५–जो भाग से सतसंग सतगुरु का कुछ अरसे तक प्राप्त हो जावे, तो बहुत ग़नीमत है, नहीं तो जितने दिन बन सके एक दफ़ा ज़रूर उनके सतसंग में हाज़िर रहकर फ़ायदा उठावे, यानी बचन उनके चेत कर सुने और समझे और विस्तार करके उनका मनन और विचार करे।

भाग चौथा

वर्णन भेद जीवों की समझ और अधिकार का

२६–जीवों की तीन क़िस्में हैं–उत्तम, मध्यम[2] और निकृष्ट[3],

१—रक्षा का हाथ। २—बीच के दर्जे के। ३—सबसे ख़राब।

और इसी तरह बुद्धि और समझ भी तीन क़िस्म की है—एक तेलिया, दूसरी मोतिया, तीसरी नमदा (मोटा ऊनी बिछौना)।

(१) पहली यानी तेलिया का ख़वास यह है कि जैसे तेल की एक दो बूँदें पानी में डालें तो वह फैल कर तमाम पानी को घेर लेती हैं, इसी तरह उत्तम अधिकारी बचन सुनकर उनका आप ही आप विस्तार करके समझता है और अपने फ़ायदे की बात को छाँट कर ग्रहण करता है।

(२) दूसरी मोतिया बुद्धि कि जैसे मोती में जिस क़दर सूराख़ किया जावे, वह उस क़दर क़ायम रहता है, यानी मध्यम अधिकारी जिस क़दर बचन सुनता है, उनको वैसा ही अपने मतलब के मुआफ़िक़ छाँट कर याद कर लेता है, लेकिन विस्तार नहीं कर सकता।

(३) तीसरी नमदा बुद्धि, जैसे नमदे में सूए से सूराख़ किया गया, तो सूराख़ होता हुआ तो नज़र आया पर फ़ौरन् ही छिप गया। ऐसे ही निकृष्ट अधिकारी बचन सुनते और समझते मालूम होते हैं, पर उनको फ़ौरन् ही भूल जाते हैं।

२७—उत्तम अधिकारी को थोड़े दिन के सतसंग से बहुत फ़ायदा हासिल हो सकता है, क्योंकि वह दो मूल[1] बातों को समझ कर उनका विस्तार और अपनी सम्हाल थोड़ी बहुत हर सूरत और हर हालत में आप ही अपनी निर्मल बुद्धि से कर सकता है। और वह दो मूल बातें यह हैं—

(१) सुरत की बैठक जाग्रत के समय नेत्रों में है और यहाँ से धार जिस क़दर अंतर में ऊँचे की तरफ़ को शब्द और स्वरूप के आसरे[2] खिंचेगी यानी पुतली उलटाई जावेगी, उसी क़दर देह और संसार से बंधन ढीला होता जावेगा, यानी इधर से बेख़बरी और उधर की तरफ़ होशियारी के साथ रस और आनन्द मिलता जावेगा। इस काम को ज़रूरी और मुफ़ीद[3] समझकर जिस क़दर बन पड़ेगा उत्तम

१—आधारभूत, ख़ास। २—सहारे। ३—फ़ायदेमंद।

अधिकारी हमेशा जारी रक्खेगा, बल्कि आहिस्ता आहिस्ता उसमें तरक़्क़ी करेगा।

(२) मन और इन्द्रियों की धारें बाहरमुख[1] जारी हो रही हैं और इच्छा यानी ख़्वाहिश के साथ यह धारें पैदा होती हैं और पुतली के उलटाने, यानी मन और सुरत की धार को अंदर में ऊपर की तरफ़ चढ़ाने में, वे तरंगों की धारें विघ्नकारक[2] हैं। इस वास्ते सिर्फ़ ज़रूरी और मुनासिब तरंगें उठानी, और इन्द्रियों की धारों को ज़रूरी कामों के वक़्त जारी रखना, और फ़िज़ूल और ग़ैरज़रूरी और नामुनासिब ख़्यालों और कामों की तरंगें अन्तर और बाहर रोकना, ख़ास कर अभ्यास के वक़्त और आम तौर पर हर वक़्त, ज़रूर चाहिए।

इस बात को समझ कर उत्तम अधिकारी अपनी सँभाल हर वक़्त मुनासिब तौर पर रख सकता है। जो मुआफ़िक़ पुराने स्वभाव और आदत के भूल और चूक हो जावे, तो कुछ मुज़ायक़ा नहीं, फिर होशियार होकर सँभाल करना चाहिए। इसी तरह कोई अरसे की कोशिश के बाद मन और इन्द्रियाँ दुरुस्ती के साथ बरतने लगेंगी।

२८—मध्यम अधिकारी को सतसंग कुछ ज़्यादा अरसे तक करना चाहिए। तब वह बचनों को सुन कर और समझ कर और थोड़ा बहुत अंतरी अभ्यास करके और भी उत्तम और मध्यम अधिकारियों को, जो सतसंग अरसे से कर रहे हैं या सतसंग में आते जाते रहते हैं, देखकर क़ाबिल इसके हो जावेगा कि दूर रह कर और राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर अपनी सँभाल थोड़ी बहुत कर सके। और जिस बात में कोई दिक़्क़त[3] या विघ्न या मुश्किल पेश आवे, तो चिट्ठी भेज कर सतगुरु से हिदायत मुनासिब वक़्तन् फ़वक़्तन्[4] हासिल करता रहे।

२९—निकृष्ट अधिकारी को बहुत अरसे तक सतसंग करने और उत्तम और मध्यम अधिकारियों की हालत देखने से कुछ फ़ायदा होगा,

१—बाहर की तरफ़। २—रुकावट डालने वालीं। ३—कठिनाई। ४—कभी कभी।

जो वह थोड़ी होशियारी और शौक़ के साथ इस काम को करेगा। और दूरी में उत्तम या मध्यम अधिकारी के सतसंग और मदद से उसका भी थोड़ा बहुत निर्वाह[1] हो जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता मध्यम अधिकारी के दर्जे पर आ जावेगा।

३०—जो लोग कि सच्चा शौक़ परमार्थ का नहीं रखते, पर सच्चे शौक़ीनों के साथ किसी लपेट[2] से संतों के सतसंग में आ गए हैं, तो उनको भी कुछ थोड़ा फ़ायदा होगा, लेकिन जब तक कि वे चेत कर होशियारी के साथ सतसंग और अन्तर अभ्यास नहीं करेंगे, तब तक उनकी हालत नहीं बदलेगी। इन लोगों को उत्तम या मध्यम अधिकारियों का संग काफ़ी होगा, क्योंकि सतगुरु के सतसंग की ताक़त और लियाक़त उन में कम होगी।

३१—खुलासा यह है कि जब तक जीव का ज़बर झुकाव संसार की तरफ़ और मन में बासना भोग और बिलास और उसकी तरक़्क़ी की रहेगी, तब तक वह संतों के सतसंग और उनकी जुगती के अभ्यास से गहरा फ़ायदा नहीं उठा सकता कि जिससे उसकी हालत जल्द बदले और परमार्थ का रस बराबर अन्तर में पावे।

३२—जो कोई सच्चा दर्दी[3] परमार्थी है, वह राधास्वामी मत की पोथियों को ग़ौर[4] से पढ़ कर बहुत फ़ायदा उठा सकता है और चिट्ठी के वसीले से उपदेश हासिल करके अभ्यास में राधास्वामी दयाल की दया से भजन और ध्यान का भी रस ले सकता है और अपना हाल वक़्तन् फ़वक़्तन् सतगुरु या उत्तम अधिकारी को लिख कर और हिदायत मुनासिब लेकर अभ्यास में तरक़्क़ी भी कर सकता है। पर कितनी ही बातें राधास्वामी मत और उसके अभ्यास की बाबत ऐसी हैं कि वे सिर्फ़ ज़बानी समझाई जा सकती हैं और लिखने में किसी न किसी क़िस्म की ग़लती या धोखा हो जाने का ख़ौफ़ है। इस वास्ते ऐसे परमार्थी को भी ज़रूर लाज़िम[5] है कि अगर ज़्यादा न हो सके तो एक मरतबा ज़रूर

१—गुज़ारा। २—संबंध। ३—परमार्थ के लिए तडप रखने वाला। ४—ध्यान। ५—ज़रूरी।

सतसंग में हाज़िर होकर और चन्द[1] रोज़ वहाँ ठहर कर जो कुछ कि शुबह[2] और शक या किसी बात में ससझ का फेर होवे, उसको दूर करावे। और जो बातें कि ज़बानी समझाई जा सकती हैं उनको बख़ूबी समझ लेवे, ताकि उसके अभ्यास की तरक़्क़ी में दूरी की वजह से ख़लल[3] न पड़े और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और सतगुरु और सुरत शब्द मार्ग की प्रीति और प्रतीति मज़बूत हो जावे।

३३—और जो ऐसे परमार्थी का किसी सूरत से सतसंग में आना न बन सके, तो जो वह सतगुरु का हुक्म लेकर किसी उत्तम अधिकारी परमार्थी से (जिसने कुछ अरसा[4] सतगुरु का सतसंग किया है) मिलेगा और कोई दिन उसका सतसंग करेगा, तो उसको थोड़ा बहुत उसी क़दर फ़ायदा हासिल हो सकता है जैसे कि सतगुरु के संग से।

३४—और जो उत्तम अधिकारी का भी सतसंग प्राप्त न होवे, तो जब तक कि मौक़ा सतगुरु या उत्तम अधिकारी सतसंगी से मिलने का न बने, तब तक जो मध्यम अधिकारी सतसंगी मिल जावे (कि जिसने सतगुरु का सतसंग किया है), तो उसी के संग अपनी परमार्थी कार्रवाई सतगुरु से चिट्ठी के ज़रिए से उपदेश लेकर जारी करे। इस तरह से उसको किसी क़दर फ़ायदा हासिल होगा और मुन्तज़िर रहे[5] कि जब मौक़ा मिले तब उत्तम अधिकारी सतसंगी से या सतगुरु से जाकर ज़रूर मिले और कोई दिन उनका सतसंग करके पूरा फ़ायदा हासिल करे।

१—कुछ। २—संदेह। ३—विघ्न। ४—समय। ५—मुन्तज़िर रहे—इंतिज़ार करे।

भाग पाँचवाँ

कुल मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा, और फ़ायदा उनके चरनों में भाव के साथ प्रीति और प्रतीति करने का और बयान उन हुक्मों का जो उन्होंने ज़बान मुबारक से फ़रमाए।

३५–राधास्वामी नाम कुल मालिक का है कि जिसका धाम ऊँचे से ऊँचा है और जहाँ माया का नाम और निशान भी नहीं है और वह धाम तीन लोक के परे है और जिसके चरनों से आदि शब्द की धार निकली जिससे कुल रचना, पहले दयाल देश और फिर तीन लोक की, हुई। और यह पद यानी राधास्वामी धाम और कुल रचना का नमूना घट घट में मौजूद है, यानी हर एक सुरत का सूत[1] कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों से अपने अपने घट में शब्द यानी चैतन्य की धार के वसीले से (जिस पर सुरत उतर कर पिंड में बैठी है) लग सकता है और वह सुरत उनकी दया को अन्तर में अभ्यास के समय और भी दूसरे वक्तों में परख सकती है।

३६–ऊपर के बयान का मतलब यह है कि हर एक सुरत, शब्द की धार के वसीले से उतर कर, पिंड में बैठी है और संत सतगुरु अथवा साधगुरू या उत्तम अधिकारी सतसंगी से भेद रास्ते और मंज़िलों का और हर एक स्थान के शब्द का और जुगती चलने की दरियाफ़्त करके राधास्वामी दयाल की दया का भरोसा रख कर अपने घट में उसी धार को पकड़ कर चरनों की तरफ़ चल सकती है। और जोकि कुल जीव यानी सुरतें कुल मालिक राधास्वामी दयाल की अंश हैं (जैसे सूरज और सूरज की किरन) और उनको हर एक पर निहायत दर्जे की दया और प्यार मंज़ूर है, सो जब कोई बिरह और प्रेम अंग लेकर सचौटी

१—संबंध।

के साथ चरनों की तरफ़ भेद लेकर चलता है, वे उस पर अन्तर में दया और मेहर फ़रमाते हैं और मदद देते हैं।

३७—इस समय में ख़ास कर जीवों पर ज़्यादा दया करना मंज़ूर है, क्योंकि कुल मालिक राधास्वामी दयाल आप नर चोले में संत सतगुरु रूप धारण करके प्रगट हुए और भेद अपने निज धाम और उसके रास्ते और मंज़िलों का और सहज तरीक़ा चलने का कि जो आज तक किसी को मालूम नहीं हुआ, निहायत कृपा करके आप प्रगट किया। और जीवों को समझा बुझा कर और अपनी दया के बल से उनकी सुरत को चढ़ा कर अपने देश में पहुँचाया और पहुँचाते हैं।

३८—और निहायत मेहर और दया करके हुक्म दिया कि जो कोई उनके चरनों में प्रेम और भक्ति धार कर उस तरीक़े का अभ्यास, यानी बिरह अंग लेकर ध्यान और भजन करेगा, तो वे अपने निज रूप से उसको अन्तर में बराबर मदद देकर और उसकी सुरत को आहिस्ता आहिस्ता चढ़ा कर एक दिन धुर धाम में पहुँचा देंगे।

३९—और यह भी हुक्म दिया कि इस वक़्त में जिस क़दर कि पुराने तरीक़े अभ्यास के हैं, वह सब ख़ारिज हैं। पहले तो वह सिर्फ़ संजम के तौर पर जारी किये गए, दूसरे, जो किसी में थोड़ी चढ़ाई का भी फ़ायदा है, सो वह इस क़दर कठिन और ख़तरनाक है कि किसी जीव से दुरुस्ती के साथ उसका बन पड़ना मुश्किल बल्कि नामुमकिन है। और जो जीव कि उन्हीं तरीक़ों में अटके रहेंगे, वह बेफ़ायदा अपना वक़्त और तन मन उस काम में ख़र्च करेंगे और सच्ची मुक्ति और पूरा उद्धार उस कार्रवाई से हरगिज़ हासिल नहीं होगा। इस वास्ते कुल जीवों को यही हुक्म फ़रमाया कि जो जुगत स्वरूप के ध्यान और नाम के अन्तरी सुमिरन और शब्द के श्रवन की जारी फ़रमाई है, उसी के मुआफ़िक़ बिरह और प्रेम अंग लेकर अभ्यास करो, तब सच्चा और पूरा उद्धार होगा। और किसी तरह जन्म मरण और चौरासी के चक्कर से छुटकारा नहीं होगा।

४०—और वक्त छोड़ने इस चोले के यह भी फ़रमाया कि कोई यह न समझे कि हम जाते हैं।

नहीं, हम हर एक अभ्यासी सतसंगी के अंग संग रहकर, उसकी दुरुस्ती और तरक़्क़ी बराबर करेंगे, बल्कि पहले से ज़्यादा फ़रमावेंगे। इस वास्ते हर एक प्रेमी भक्त और सुरत शब्द के अभ्यासी को लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल के चरनों में गहरी प्रीति करे और उनके चरनों की सरन लेकर अपना अभ्यास दुरुस्ती के साथ, जिस क़दर बन सके, बराबर यानी बिला नाग़ा करता रहे, और उनकी दया मेहर अपने अन्तर में परखता चले।

४१—और यह भी राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया कि जिस किसी को सुरत शब्द मार्ग का उपदेश दिया जाता है, उस वक्त उसको सत्तपुरुष राधास्वामी का दामन पकड़ा दिया जाता है। सो जो कोई सचौटी के साथ थोड़ा बहुत प्रेम अंग लेकर उस अभ्यास को बराबर करता रहेगा, और जहाँ तक मुमकिन है मन के बिकारों में नहीं बरतेगा, तो उस पर सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल अपनी दया फ़रमाते रहेंगे यानी उसके मन और सुरत को आहिस्ता आहिस्ता घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ाते जावेंगे और माया और काल के विघ्नों से उसकी रक्षा करते रहेंगे।

४२—सब जीव थोड़े बहुत काल के कर्ज़दार हैं, यानी उन पर पिछले अगले कर्म चढ़े हुए हैं। सो जो कोई सचौटी के साथ राधास्वामी दयाल की सरन में आया, और सर्व अंग करके उनका सेवक हो गया, यानी और किसी में उसका परमार्थी भाव और इष्ट नहीं रहा, और सतसंग करके राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रीति और प्रतीति शुरू करी है, तो ऐसे जीव को वे अपनी दया से अपनाते हैं और फिर उसकी सब तरह से सँभाल और रक्षा दया के साथ आप फ़रमाते हैं और उसके कर्म जिस क़दर जल्दी होता है काटते हैं। और दिन दिन प्रीति प्रतीति बढ़ा कर और अभ्यास में तरक़्क़ी देकर एक दिन अपने निज धाम में बासा देंगे।

भाग छठवाँ

वर्णन हाल राधास्वामी दयाल की दया का वास्ते उद्धार जीवों के और जारी करने उपदेश के आम तौर पर

४३–जिस किसी को कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल अपनी दया से साध या उत्तम प्रेमी सतसंगी की गति बख़्शें और उसके द्वारे और जीवों की परमार्थी दुरुस्ती करवावें, तो वे उनके परम सेवक होंगे। और बाहर से जिस क़दर कार्रवाई समझाने और बुझाने और अभ्यास में मदद देने और भक्ति और प्रेम बढ़ाने की ज़रूर है, वह उन साध या प्रेमी सतसंगी के हाथों से करवाते हैं। और अन्तर में जिस क़दर कि मन और सुरत की चढ़ाई के वास्ते और काल और कर्म और माया वग़ैरह के विघ्नों के दूर करने के लिये मदद दरकार है, वह मेहर और दया से राधास्वामी दयाल अपने निज रूप से आप करते हैं, क्योंकि वक्त उपदेश के हर एक सुरत का सूत यानी रिश्ता उसके घट में राधास्वामी दयाल के चरनों से लग जाता है। और उसी रिश्ते के द्वारे परमार्थी अभ्यासी सुरत की प्रार्थना वग़ैरह की ख़बर चरनों में पहुँच सकती है। और जब मौज होती है तब दया की धार उसी रास्ते से उतर कर और अभ्यासी को रस देकर उसके प्रेम को बढ़ाती है।

४४–और जिस किसी को राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से संत गति बख़्शें, यानी अपने धाम में बासा देवें, तो उसका निज रूप वही हुआ जो उनका है, यानी शब्द स्वरूप करके एकता हो गई, और उसकी मौज वही होगी जो उनकी मौज है। और जो उसके द्वारे जीवों का कारज करना मंज़ूर है, तो वह अन्तर और बाहर, उनकी मौज के अनुसार, जो कार्रवाई जीवों के उद्धार के वास्ते मुनासिब और ज़रूर है, जारी करेगा।

४५–ख़ुलासा यह है कि कुल कार्रवाई जीवों के उद्धार की कुल

मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के मुआफ़िक़ जारी होती है और वे आप निगरानी उस कार्रवाई की फ़रमा रहे हैं। और अपनी ख़ास दया, जिस जिस जीव पर जब जब और जैसी जैसी मुनासिब होती है, करते हैं और दिन दिन उसकी प्रीति और प्रतीति चरनों में अभ्यास के साथ बढ़ाते जाते हैं।

४६—इस वास्ते कुल जीवों को, जो राधास्वामी मत में शामिल हैं, चाहिए कि उनके चरनों का इष्ट मज़बूत बाँधें और उनके धाम में पहुँचने का इरादा ऐसा पक्का करें कि रास्ते में किसी स्थान पर थक कर या ललचा कर ठहरने की ख़्वाहिश न होवे। और जो जुगत चलने और चढ़ने की यानी ध्यान और भजन की उन्होंने जारी फ़रमाई है, उसका अभ्यास बराबर नियम और प्रेम के साथ हर रोज़ करते रहें और जब जब मौक़ा मिले सतसंग भी करते रहें और संशय और भर्म दूर करके प्रीति और प्रतीति चरनों में बढ़ाते रहें, तो राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से आहिस्ता आहिस्ता उनका कारज बन जावेगा।

भाग सातवाँ

वर्णन ज़ाहिरी आदाब और क़ायदा भक्ति का राधास्वामी दयाल के चरनों में

४७—कुल जीवों को जो राधास्वामी मत में शामिल हैं मुनासिब और लाज़िम है कि जहाँ तक बन सके एक दफ़ा आगरे में आकर राधास्वामी बाग़ में राधास्वामी दयाल की समाध और उनके निशानों का, जैसे पलँग और कुर्सी और भजन करने की चौकी का, भाव सहित[1] दर्शन करें। और वहाँ मत्था टेक कर अपना भाग बढ़ावें और समाध पर हार फूल चढ़ावें, क्योंकि इन सब चीज़ों में जोकि उनकी सेवा में

१—भाव सहित—श्रद्धापूर्वक।

रही हैं उनके चरनों की निर्मल और अमृत की धारा मौजूद है। राधास्वामी बाग़ के कुए का जो जल है, वह राधास्वामी दयाल का मुखामृत और चरनामृत है, उसको ज़रूर पान करें।

४८—राधास्वामी दयाल ने ख़ुद अपनी ज़बान मुबारक से फ़रमाया कि जो कोई राधास्वामी बाग़ में आवेगा, उसको भजन करने के बराबर फ़ायदा होगा। और जो वहाँ बैठ कर भजन और ध्यान करेगा, उसको विशेष फ़ायदा हासिल होगा, यानी राधास्वामी दयाल की ख़ास दया और मेहर का अधिकारी होगा।

भाग आठवाँ

वर्णन हाल उपदेशकर्त्ताओं का और हिदायत मुनासिब उनके वास्ते

४९—जो कोई राधास्वामी दयाल के सेवकों में से जीवों को राधास्वामी मत का उपदेश देता है, उसके साथ उसके उपदेशी जो साध भाव का बरताव करें, तो मुज़ायक़ा[1] नहीं। पर गुरू और सतगुरु और संत भाव कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में लाना चाहिए।

५०—और जो कोई बिलफ़र्ज़[2] किसी उपदेशक सतसंगी के साथ अपनी हठ से गुरू भाव का बरताव करे तो ख़ैर, लेकिन कुल मालिक और परम पुरुष पूरन धनी का भाव राधास्वामी दयाल के चरनों में ज़रूर लाना चाहिए। इसमें उसका कारज बहुत दुरुस्ती के साथ और निर्विघ्न[3] बनेगा, क्योंकि राधास्वामी दयाल की मेहर और दया उसकी सँभाल और रक्षा करेगी।

५१—जो कोई सतसंगी अभी आप ही अभ्यासी हैं, और इजाज़त

१—हर्ज। २—मान लो। ३—बिना किसी विघ्न के।

और हुक्म के साथ दूसरों को उनसे उपदेश दिलवाया जाता है, तो उनको मुनासिब है कि किसी अपने उपदेशी को अपने साथ साध भाव का बरताव न करने दें। सिर्फ़ इस क़दर क़ाफ़ी होगा कि वे उसको अपना बड़ा भाई समझें। और जो कोई उपदेशक सतसंगी बनज़र[1] अपने बचाव के इस क़दर बरताव भी मंज़ूर न करे, तो वह अपने उपदेशियों के साथ बराबरी यानी मित्र भाव का बरताव जारी रक्खे। और जो कोई उपदेशक सतसंगी किसी क़िस्म की बड़ाई का बरतावा न मंज़ूर करे, तो उसके उपदेशियों को चाहिए कि उसके साथ मित्र भाव बरतें और साध भाव या बड़े भाई का भाव न बरतें और संत सतगुरु और कुल मालिक का भाव राधास्वामी दयाल के चरनों में लावें।

५२—राधास्वामी दयाल के किसी सेवक को, जो जीवों को उपदेश राधास्वामी मत का देता है, किसी सूरत में अपने उपदेशियों पर दावा गुरुवाई का बाँधना नहीं चाहिए। यह स्वभाव और दस्तूर संसारी यानी लोभी और मानी उपदेशकर्त्ताओं का है। जो यही हालत राधास्वामी दयाल के सेवक की हुई, तो वह भी संसारी गुरुओं में दाख़िल हुआ। फिर उसके उपदेश से जीवों को असली फ़ायदा बहुत कम होगा, यानी उनके मन की गढ़त[2] बिलकुल नहीं होवेगी, और इस सबब से अभ्यास में तरक़्क़ी भी नहीं होगी और कर्म भर्म और संशय भी दूर नहीं होंगे, क्योंकि लोभी और मानी गुरू अपने सेवकों से आप डरता रहता है कि कहीं उसको छोड़ न देवें जिससे उसकी आमदनी में ख़लल पड़े।

५३—राधास्वामी मत में गुरू, सतगुरु और संत नाम कुल मालिक का है, और उपदेशकर्त्ता का दर्जा साध या बड़े भाई या मित्र के मुआफ़िक़ होना चाहिए। और इसमें भी उपदेशकर्त्ता को लिहाज़ रखना चाहिए कि अपनी हालत को परखता चले और मान बड़ाई और धन की चाह लेकर उपदेशियों से साध भाव का बरतावा मंज़ूर न करे, नहीं तो धोखा खावेगा और उसके उपदेश से जीवों को भी कुछ फ़ायदा हासिल न होगा।

१—ख्याल से। २—दुरुस्ती।

५४–कोई अपने आप से गुरू नहीं बन सकता है। जब उपदेशियों को उसकी निस्बत ऐसा भाव आवे और वे उसके मुआफ़िक़ उससे बरतावा करना चाहें, तो भी उसको मुनासिब है कि जहाँ तक बने अपना बचाव करे। और जो वे निहायत दर्जे की हठ करें, तो उनके प्रेम और भक्ति के बढ़ाने के वास्ते उनकी उमंग से कम दर्जे की सेवा मंज़ूर करे। और होशियारी और एहतियात रक्खे कि उसका मन फूलने न पावे, यानी गुरुवाई का अहंकार न लावे और किसी बात में बेएहतियाती[1] और बेपरवाही और निडरता के साथ बरताव न करे, नहीं तो अपना अकाज[2] करेगा और जीवों को भी उससे थोड़ा बहुत परमार्थी और दुनियवी नुक़सान पहुँचेगा।

५५–जो उपदेशकर्त्ता आप सच्चा परमार्थी है, वह आप भी निरबंध होने का जतन करता रहेगा और अपने उपदेशियों के भी बंधनों को सहज सहज ढीला करता और काटता जावेगा, न कि उपदेशियों के संग अपने वास्ते नया बंधन पैदा करेगा और उन पर दावा गुरुवाई का बाँध कर ज़ोर चलावेगा, या किसी तरह की उनकी तहक़ीक़ात[3] और तलाश में (जो उनके मन में अभी पूरी प्रतीति राधास्वामी मत की नहीं आई है, या किसी तरह के शक और शुबहे बाक़ी हैं, या किसी और इष्टों में उनका मन अभी बँधा हुआ है) हर्ज और ख़लल डालेगा, इस ख़ौफ़ से कि कहीं वह उसको छोड़ न जावें और उसकी मान बड़ाई और आमदनी में घाटा न होवे।

यह हालत संसारी और नस्ली गुरुओं की है, और जो कोई ऐसा बरताव करेगा, उससे जीवों का कारज कुछ नहीं बन सकेगा और न उनकी टेक पिछले इष्टों और कर्म धर्म की काटी जावेगी और न राधास्वामी मत की पूरी प्रतीति आवेगी और न राधास्वामी दयाल के चरनों का पक्का और सच्चा इष्ट बँधेगा।

५६–जो हाल कि ऊपर लिखा गया अभ्यासी सतसंगियों का है,

१—लापरवाही। २—हानि। ३—जाँच परख।

जिन्होंने मान बड़ाई और धन और भोगों के लालच से बग़ैर हुक्म और इजाज़त के उपदेश करना शुरू कर दिया है, या थोड़ी सी इजाज़त ख़ास शर्तों के साथ हासिल करके और फिर उन शर्तों को भूल कर मनमुखता के साथ कार्रवाई उपदेश की आम तौर पर जारी करदी है। इन लोगों को अपने परमार्थी फ़ायदे का ख़्याल पेश नज़र[1] रख कर ऊपर की हिदायत के मुआफ़िक़ अमलदरामद[2] करना चाहिए। और जो कोई उनको उनकी नाक़िस[3] कार्रवाई से आगाह[4] करके सलाह मुनासिब देवे, उसका बचन प्यार भाव से सुन कर और अपने मन में ग़ौर और बिचार करके मानना चाहिए, न कि उससे नाराज़ होकर और उसको ईर्षावान् समझ कर अपने उपदेशियों का ग़ोल[5] जुदा बाँध कर और सतसंग से अलहदा होकर अपनी गुरुवाई न्यारी चलाना।

५७—जो कितने ही साधू या गृहस्थ सतसंगी इस तरह की कार्रवाई करेंगे, तो बहुत से जुदे जुदे ग़ोल हो जावेंगे, और एक दूसरे का आपस में इत्तिफ़ाक़ न होगा और जो वे साधू या गृहस्थ सतसंगी अपने आप को गुरू और सतगुरु थाप कर अपनी पूजा और मानता जुदी जारी करेंगे और राधास्वामी दयाल की संगत और गुरुद्वारे से, जो आगरे में है, अपना ताल्लुक़ न रक्खेंगे या मेल मिलाप छोड़ देंगे, तो कुल मालिक राधास्वामी दयाल का इष्ट और उनके चरनों की भक्ति आहिस्ता आहिस्ता कम या गुम[6] हो जावेगी। इसमें बड़ा भारी हर्ज राधास्वामी मत के प्रकाश में वाक़ै होगा और यह भारी नुक़्सान उनके सबब से पैदा होगा जो ऐसी कार्रवाई मनहठ[7] और अहंकार और ख़ुदमतलबी[8] की वजह से शुरू करेंगे और समझौती पाने पर भी उसको अपने तौर से जारी रक्खेंगे।

५८—मुनासिब तो यह है, बल्कि हर एक राधास्वामी मत के सतसंगी पर फ़र्ज़ है, कि जो जो राधास्वामी दयाल का इष्ट रखते हैं और राधास्वामी धाम में पहुँचना चाहते हैं, वे सब आपस में भाईचारे के

१—पेश नज़र—दृष्टि में। २—कार्रवाई। ३—ओछी। ४—होशियार। ५—गिरोह। ६—लुप्त। ७—मन की ज़िद। ८—स्वार्थ।

तौर पर बरताव करें और एक दूसरे से भाव और प्यार के साथ पेश आवें, न कि अपने अपने उपदेशक की टेक बाँध कर कुल मालिक राधास्वामी दयाल का इष्ट भी ढीला कर दें और एक दूसरे की ईर्षा करके आपस में विरोध पैदा करें। यह बड़ी लज्जा की बात है और इस मत पर, जो कि आम भाईचारे का रिश्ता मज़बूत करने वाला है, भारी इलज़ाम[1] लाती है और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के बरख़िलाफ़ है।

भाग नवाँ

हिदायत उपदेशियों को

क़िस्म पहली

साधू और सतसंगियों के उपदेशियों को

५९—जिस किसी के मन में सच्चे मालिक के मिलने और अपने पूरे उद्धार कराने की चाह है, उसको चाहिए कि जहाँ तक मुमकिन होवे संत सतगुरु या साधगुरू से उपदेश लेवे और जो वे न मिलें, तो उनके सच्चे प्रेमी सतसंगी से, गृहस्थ होवे या विरक्त, उपदेश लेकर अभ्यास शुरू करे और राधास्वामी दयाल का इष्ट बाँधकर उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति बढ़ावे। वे अपनी मेहर से उसका संजोग[2] संत सतगुरु या साधगुरू से, जब मुनासिब होगा, मिला देंगे।

६०—जो उसके मन में उमंग सेवा की पैदा होवे, तो तन और धन की सेवा राधास्वामी मत के साधू और सतसंगियों की भाव के साथ करे, लेकिन मन राधास्वामी दयाल के चरनों में लगावे।

६१—उपदेशकर्त्ता को वक्त लेने उपदेश के अपना गुरू न बनावे,

१—दोष। २—संबंध।

लेकिन उसको साधन करने वाला समझ कर उसका प्यार और भाव के साथ सतसंग करे और जब जब उमंग होवे और वह मंज़ूर करे, तो तन धन की सेवा भी करे और राधास्वामी दयाल के चरनों का इष्ट बाँध कर अपना अभ्यास जारी रक्खे और संत सतगुरु से मिलने की चाह मन में रक्खे और जब मौज से वे मिल जावें, तब उनसे गहरी प्रीति करे।

६२—जब संत सतगुरु से मेला होगा, तब इसको घट में परचे मिलेंगे और बाहर से भी सतसंग में इसको रस विशेष आवेगा और संशय और भर्म सहज में दूर होते जावेंगे, और प्रीति और प्रतीति कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में, और भी सुरत शब्द मार्ग की, बढ़ती जावेगी। इसी तरह आहिस्ता आहिस्ता थोड़ी थोड़ी पहचान संत सतगुरु की होती जावेगी।

६३—जो कोई उपदेशकर्त्ता उपदेशी पर दावा गुरुवाई का बाँधे, या और किसी क़िस्म का ज़ोर या हुक्म चलावे, या उसको खोज और तलाश से बाज़ रक्खे[1] और उसके संग से सच्चे परमार्थी की हालत थोड़ी बहुत न बदले, यानी प्रीति और प्रतीति राधास्वामी दयाल के चरनों में बढ़ती न जावे और संसार की तरफ़ से किसी क़दर वैराग्य या उदासीनता चित्त में न आवे, तो उस उपदेशक को सच्चा गुरू नहीं समझना चाहिए। उसके संग से उपदेशी का सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होगा। ऐसी सूरत में उपदेशी को ऐसे उपदेशक के साथ सिर्फ़ साध भाव मानना चाहिए और पूरे गुरू का खोज वास्ते अपने पूरे उद्धार के जारी रखना मुनासिब है। और जब तक पूरे गुरू से मेला नहीं होगा, तब तक कुल मालिक राधास्वामी दयाल, जिस क़दर मुनासिब होगा, ऐसे उपदेशी की सँभाल फ़रमावेंगे और रफ़्ता रफ़्ता सतगुरु से भी मेला करावेंगे।

६४—जब संत सतगुरू मिल जावें, तो उपदेशी सतसंगी को मुनासिब है कि पहले उपदेशकर्त्ता से भी मेल बदस्तूर जारी रक्खे। लेकिन जो

१—बाज़ रक्खे—रोके।

वे उसको संत सतगुरु की भक्ति से हटावें या उसमें विघ्न डालें, तो संत सतगुरु से अर्ज़ हाल करके और उनकी आज्ञा लेकर उस उपदेशकर्त्ता से आयन्दा को मेल मिलाप ढीला कर दे, या जो मुनासिब होवे बिलकुल मौक़ूफ़[1] कर देवे।

६५—जो वे उपदेशकर्त्ता सच्चा शौक़ परमार्थ का रखते होंगे, तो वह आप सतगुरु से मिलेंगे और अपने उपदेशी को भी मिलावेंगे। और इसमें सबकी प्रीति परस्पर बढ़ेगी और राधास्वामी दयाल के चरनों में भक्ति ज़्यादा मज़बूत होगी। और जो वे उपदेशक मानी और लोभी हैं और अपने परमार्थी नफ़े नुक़सान का कुछ ख़्याल नहीं करते, तो वे आप भी सतगुरु से नहीं मिलेंगे और न अपने उपदेशी को मिलने की इजाज़त देंगे। और जो वह उनका कहना नहीं मानेगा, तो उससे विरोध और लड़ाई करने को तैयार होंगे। ऐसे उपदेशक से सच्चे परमार्थी को मेल रखना मुश्किल होगा और उनसे एक न एक दिन नाता मुहब्बत का तोड़ना पड़ेगा, और इस हालत में उस पर किसी क़िस्म का दोष नहीं आ सकता।

भाग नवाँ

क़िस्म दूसरी

नसीहत संतों के उपदेशियों को

६६—जिन लोगों ने कि संत सतगुरु या साधगुरू से उपदेश लिया है, उनको चाहिए कि संत सतगुरु या साधगुरू से गहरी प्रीति करें और होशियारी से उनका सतसंग करें। और जिस क़दर कि अंतर और बाहर के सतसंग और परचों वग़ैरह से पहचान उनकी होती जावे, उसी क़दर उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाते जावें

१—तर्क करना, छोड़ देना।

और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पूरी प्रीति और प्रतीति लावें। तब कारज उनका दुरुस्त बनेगा क्योंकि निज स्वरूप संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल का एक ही है।

६७—ज़ाहिर है कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में सतसंग करके और राधास्वामी मत और उसके भेद का निर्णय सुनकर पूरी प्रतीति आ सकती है और फिर प्रीति भी उनके चरनों में, यानी अन्तर शब्द स्वरूप में (जो उनका निज रूप है), की जा सकती है। और इस तरह अन्तर अभ्यास और बाहर का सतसंग दिन दिन शौक़ के साथ जारी रह सकता है।

६८—लेकिन संत सतगुरु और साधगुरू के चरनों में एकाएक ऐसी प्रीति और प्रतीति (जब तक कि थोड़ी बहुत उनकी पहचान न आवे) नहीं हो सकती और यह पहचान उनकी दया पर मौक़ूफ़[1] है। चाहे वे अन्तर और बाहर परचे देकर जल्द उपदेशी की हालत को (जो वह सच्चा और उत्तम अधिकारी है) बदल देवें, यानी उसको थोड़ा बहुत प्रेम बख़्श देवें, या जो वह मध्यम और निकृष्ट[2] अधिकारी है, तो बाहर सतसंग और अन्तर अभ्यास कराके आहिस्ता आहिस्ता उसकी हालत बदलें। पर इन दोनों सूरतों में उपदेशी को लाज़िम और ज़रूर है कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पूरी प्रतीति और उनकी दया का भरोसा लावे, तो उसको हर हालत में अन्तर और बाहर सहारा मिलता रहेगा। और जब जब संत सतगुरु या साधगुरू की तरफ़ से उसका मन रूखा और फीका हो जावेगा, उस वक़्त राधास्वामी दयाल उसकी मदद फ़रमावेंगे, जो वह उनकी बानी का पाठ और अन्तर अभ्यास यानी ध्यान और भजन करता रहेगा।

६९—सतगुरु स्वरूप में पूरा पूरा भाव और पूरी प्रतीति एकबारगी आनी मुश्किल है और फिर उसका बराबर एक रस क़ायम रहना निहायत कठिन है। इस वास्ते जो कोई दानाई[3] के साथ चाल चलेगा,

१—निर्भर। २—सबसे सराब। ३—होशियारी।

यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पूरी प्रीति और प्रतीति करेगा, तो वह किसी वक्त़ सतगुरु से क़तई बेमुख नहीं होगा, क्योंकि देह रूप से सतगुरु और राधास्वामी दयाल जुदा मालूम होते हैं लेकिन निज रूप यानी शब्द स्वरूप उनका एक ही है। तो जब कोई सतगुरु से रूखा फ़ीका हो गया और राधास्वामी दयाल के चरनों में उसका भाव बदस्तूर रहा, तो वह असल में सतगुरु से भी बेमुख नहीं हुआ। सिर्फ़ उनके देह स्वरूप की तरफ़ उसका भाव घट गया और ज़ाहिरी बरताव में रूखा फ़ीका हो गया, पर उनके शब्द स्वरूप को, जो राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रीति और प्रतीति रही आई, बदस्तूर पकड़े रहा और उससे बेमुखता नहीं हुई। इस सूरत में अन्तर अभ्यास और बानी का पाठ करने से, जल्द या थोड़ी देर के बाद, उसकी प्रीति सतगुरु के देह स्वरूप में राधास्वामी दयाल की दया से बदस्तूर हो जावेगी।

७०—इस वास्ते कुल उपदेशी यानी सतसंगियों पर फ़र्ज़ है कि अपने फ़ायदे के वास्ते कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में गहरी और पूरी प्रतीति और प्रीति करें और सतगुरु स्वरूप में भी, जहाँ तक बन सके, पूरा प्यार और भाव लावें और उनके देह स्वरूप को ऐसा समझें कि राधास्वामी दयाल अपने निज पुत्र यानी निज धारा के वसीले से आप उस स्वरूप में प्रवेश करके उनका कारज, जिस क़दर कि बाहर से सँवारना मंज़ूर है, बनाते हैं और अंतर में अपने निज रूप यानी शब्द स्वरूप से सँभाल करते हैं।

७१—और राधास्वामी दयाल के देह स्वरूप में, जो उन्होंने धारण करके राधास्वामी मत का प्रकाश किया और सहज जुगत मन और सुरत के चढ़ाने की सुरत शब्द मार्ग से (जिससे जीव का सच्चा उद्धार मुमकिन है) प्रगट करी, पूरा भाव और प्यार लाना चाहिए और बारंबार उनका शुकराना अदा करना चाहिए कि अति दया करके, वास्ते जारी रखने उपदेश और उद्धार जीवों के, संत सतगुरु और साधगुरू और प्रेमी सतसंगी बनाते और पैदा करते जाते हैं। अगर संत सतगुरु के स्वरूप को

पिता माना जावे, तो राधास्वामी दयाल के स्वरूप को महापिता मानना चाहिए, क्योंकि वे संत सतगुरु और साधगुरू के बनानेवाले और पैदा करनेवाले हैं और उन्हीं की मौज और दया की ताक़त से यह दोनों अपनी कार्रवाई जारी करते हैं और उन्हीं का भरोसा रखकर जीवों को उपदेश निज धाम में पहुँचने का करते हैं और आप भी उसी धाम के बासी हैं।

७२–संत सतगुरु को कुल मालिक राधास्वामी दयाल का पुत्र मानना चाहिए। सो जब किसी को उनकी थोड़ी बहुत पहचान आवे, उसको मुनासिब है कि संत सतगुरु के चरनों में पिता का भाव लावे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में (जो संत सतगुरु के पिता हैं) परम पिता या महापिता का भाव लावे। इस तरह उसकी प्रीति दोनों स्वरूपों (यानी देह स्वरूप और शब्द स्वरूप में) दुरुस्ती के साथ क़ायम रहेगी और बढ़ती जावेगी।

७३–इस क़दर भेद जो ऊपर किया गया उस हालत में मानना होगा कि जब किसी को थोड़ी बहुत परख और पहचान संत सतगुरु की आई है। नहीं तो आम तौर पर कुल सतसंगियों को, चाहे उन्होंने उपदेश संत सतगुरु से लिया है या किसी सतसंगी से, मुनासिब और लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल को कुल मालिक यानी परम पुरुष पूरन धनी मान कर, उन्हीं के चरनों में प्रेम प्रीति करें और उनके शब्द स्वरूप में भाव और प्यार लाकर उमंग के साथ अंतर अभ्यास में लगें। तब आहिस्ता आहिस्ता उनकी दया की परख आती जावेगी। और फिर जो उपदेशक संत सतगुरु हैं, तो उनकी गति और महिमा की भी ख़बर पड़ती जावेगी और उनमें भी भाव और प्यार उस दर्जे का, जो कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के निज और प्यारे पुत्र में लाना चाहिए, आता जावेगा।

भाग नवाँ

क़िस्म तीसरी

हिदायत कुल उपदेशी यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को

७४–कुल जीवों को, जब कि वे राधास्वामी मत में शामिल होवें और उपदेश सुरत शब्द मार्ग का लेकर अंतर अभ्यास में लगें, लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल को कुल मालिक और कुल कर्त्ता और सर्व समर्थ और प्रेम और ज्ञान का भंडार समझें और उनके देह स्वरूप को, जो उन्होंने धारण करके राधास्वामी मत को प्रगट किया और सहज जुगत सुरत शब्द मार्ग की वास्ते चढ़ाने मन और सुरत के बताई, कुल मालिक राधास्वामी का औतार स्वरूप समझें, और दोनों में गहरी प्रतीति और प्रीति लावें और उनकी मेहर और दया का आसरा और भरोसा लेकर अभ्यास शुरू करें।

७५–और जोकि कुल मालिक राधास्वामी दयाल अपने निज स्वरूप से कुल के कर्त्ता और धर्त्ता हैं और कुल रचना उनके आधीन है, इस वास्ते सच्चे मन से उनके चरनों की ओट और सरन लेना हर एक सतसंगी पर फ़र्ज़ है, यानी सब कामों में उनकी मौज और दया का आसरा और भरोसा रखना चाहिए और उन्हीं को अपना सच्चा हितकारी और उद्धारकर्त्ता समझकर उनका इष्ट और उनके चरनों में, यानी उनके निज धाम में, पहुँचने का इरादा पक्का और मज़बूत करना चाहिए। तब उससे अभ्यास दुरुस्ती से बनेगा और कुछ अंतर में रस भी आवेगा, और दिन दिन तरक़्क़ी होती जावेगी और शौक़ भी बढ़ता जावेगा।

७६–गुरु स्वरूप में, जो कि देहधारी है, गहरा भाव और प्यार, जैसे कि कुल मालिक के चरनों में पैदा हो सकता है, आना बहुत

मुश्किल है जब तक कि सतसंग और अभ्यास करके उनकी थोड़ी बहुत परख और पहचान न आवे। इस वास्ते बिना पहचान के जो कोई उनकी महिमा करेगा, वह सुनी हुई या पढ़ी हुई होगी। और जब तक कि अन्तर हृदय से भाव और प्यार न उपजेगा, तब तक भक्ति के अंगों में जैसा कि चाहिए, अन्तर और बाहर, दुरुस्ती और सचौटी के साथ नहीं बरता जावेगा।

७७—लेकिन जब किसी को अंतर में रस और आनन्द मिलेगा और शुकराने में सेवा की उमंग उठेगी, उस वक्त, जो वह राधास्वामी दयाल के साथ बरताव करना चाहे, उसको मुनासिब है कि संत सतगुरु या साध और सतसंगी के साथ थोड़ा बहुत वही बरताव करे, क्योंकि राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है कि संत सतगुरु उनका निज रूप और साध और सतसंगी उनके देह स्वरूप हैं। जो कोई उनकी सेवा करेगा, वह राधास्वामी दयाल की सेवा में शुमार की जावेगी और उसका फल, यानी भक्ति और प्रेम, वे अपनी मेहर से आप देवेंगे।

भाग दसवाँ

क़िस्म पहली

जवाब बाज़ सवालों और संदेहों का जो कि प्रेमी अभ्यासियों के मन में निस्बत बरताव भक्ति के सतगुरु स्वरूप और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में अक्सर पैदा होते हैं।

७८—जो कोई कहे कि राधास्वामी दयाल की बानी में जहाँ तहाँ महिमा संत सतगुरु स्वरूप की कही है और यह कि जब तक कि गुरु स्वरूप में पूरा प्यार नहीं आवेगा, तब तक शब्द यानी निज स्वरूप की

प्राप्ति नहीं होगी, यह बचन सच है। लेकिन समझना चाहिए कि ऐसा भाव और प्यार गुरु स्वरूप में, जब तक कि सतसंग और अभ्यास करके कुछ अंतर में रस नहीं मिलेगा और थोड़ी बहुत पहचान नहीं आवेगी, नहीं आवेगा और जब तक कि ऐसी हालत न होवे, तब तक बदस्तूर मुख्यता प्रेम और प्रीति की कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में करना चाहिए।

७९–संत मत में प्रेम की भारी महिमा है। और सबब उसका यह है कि जहाँ जिसका सच्चा और पूरा प्रेम है, वहीं उसका तन मन धन सहित झुकाव होता है और या तो वह आप चलके प्रीतम से मिलता है, या प्रीतम उसको आप बुला लेता है, या आप ही चलकर उससे मिलता है।

८०–परमार्थ में जब किसी का सच्चा प्रेम, महिमा सुन कर और जगत और उसके पदार्थों की नाशमानता देखकर, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में आया, तब राधास्वामी दयाल दया करके अपने पुत्र यानी निज धारा के वसीले से आप उस प्रेमी को चरनों में लगाते हैं और रास्ते का भेद देकर उसको निज धाम में बुलाने और पहुँचाने के निमित्त जुगती के साथ अभ्यास कराते हैं। यह पुत्र यानी निज धारा का स्वरूप उन्हीं का देह स्वरूप है और इसका और उनका निज स्वरूप एक ही है। लेकिन जो कि देह स्वरूप की पहचान कठिन है, इस सबब से प्रथम निज रूप की महिमा प्रेमी के हृदय में बसा कर उसी में उसकी प्रीति और प्रतीति लगाते हैं और उसी स्वरूप से मिलने का जतन यानी सुरत शब्द मार्ग का अभ्यास कराते हैं।

८१–निज स्वरूप की महिमा और बड़ाई हर हालत में ज़्यादा से ज़्यादा है और प्रेमी का बग़ैर उस स्वरूप की प्राप्ति के कारज पूरा नहीं बन सकता है। इस वास्ते जो कार्रवाई मुआफ़िक़ ऊपर की दफ़ा के उससे शुरू कराई गई, वह हर हालत में दुरुस्त है।

८२–लेकिन जोकि प्रेमी संसारी रूपों में पहले से लगा हुआ और

अटक रहा है और कुल मालिक के निज रूप को न तो देखा है और न उसका सतसंग के बचन सुन कर अच्छी तरह अनुमान कर सकता है, इस वास्ते जैसा चाहिए उसमें प्यार नहीं आ सकता।

८३—पर उसी निज स्वरूप का जो देह स्वरूप यानी संत सतगुरु रूप है, वह उन्हीं रूपों के मुआफ़िक़ है जिनमें प्रेमी अपने स्वभाव के मुआफ़िक़ संसार में प्रीति लगाता आया है। इस सबब से जो थोड़ी बहुत भी पहचान संत सतगुरु की आ जावे, तो यह प्रेमी उनके स्वरूप में विशेष प्यार आसानी से ला सकता है और अनेक तरह की सेवा तन मन धन से करके उस प्यार को बढ़ा सकता है। और फिर उसी स्वरूप का अन्तर में स्थान स्थान पर ध्यान करके और जब तब मेहर और दया से दर्शन पाकर, अपने मन और सुरत को, उनके चरनों के स्पर्श करने के निमित्त[1], सहज में चढ़ा सकता है और आहिस्ता आहिस्ता एक दिन धुर धाम में पहुँच सकता है।

८४—जिस वक़्त कि ध्यान की मदद से मन और सुरत सिमट कर किसी स्थान पर पहुँचेंगे या जम जावेंगे, तब शब्द भी साफ़ सुनाई देवेगा और उसकी धुन को पकड़ के सुरत जल्द चढ़ेगी।

८५—नीचे के स्थानों यानी पट चक्र में सिमटाव और चढ़ाई बग़ैर मदद और ध्यान गुरु स्वरूप के किसी क़दर मुमकिन है, यानी वहाँ ध्यान मुक़ामी[2] स्वरूप का किसी क़दर काम दे सकता है। लेकिन ऊँचे मुक़ामों की चढ़ाई सिर्फ़ शब्द के आसरे, बग़ैर मदद गुरु स्वरूप के, मुश्किल है।

८६—जो कोई कहे कि गुरु स्वरूप नाशमान है, उस का ध्यान करना फ़िज़ूल है और वह पूरा फ़ायदा नहीं देगा, उसका यह जवाब है कि जो आकार गुरु स्वरूप का प्रेमी ध्यानी के अंतर में प्रगट होगा और होता है, वह स्वरूप चैतन्य अन्तरजामी आप धारण करता है और जोकि

१—लिए। २—विशेष स्थान के।

चैतन्य अविनाशी है और प्रेमी ध्यानी के सदा संग है, इस वास्ते वह स्वरूप भी अविनाशी और सदा ध्यानी के संग रहेगा। जहाँ तक कि रूप और आकार की रचना है और जहाँ से कि अरूपी कारख़ाना[1] शुरू हुआ है, वहाँ तक वही स्वरूप प्रेमी को पहुँचा देगा और अरूप से मिला देगा और जिस क़दर कि चढ़ाई रास्ते में होती जावेगी, उसी क़दर वह आकारी स्वरूप झीना और सूक्ष्म और ज़्यादा से ज़्यादा नूरानी होता जावेगा और एक दिन अरूप से मिलाकर छोड़ेगा। और वहाँ पर सतगुरु का आकारी स्वरूप और उनका निज रूप (जो अरूप है) और प्रेमी सेवक का रूप भी, जो ऊँचे देश में चढ़ाई के साथ सूक्ष्म और नूरानी होता चला गया है, सब एक यानी अरूप हो जावेंगे और फिर निराकार यानी अरूपी स्वरूप से यह प्रेमी सेवक अपने कुल मालिक राधास्वामी दयाल के दर्शनों के आनन्द और बिलास को प्राप्त होगा।

८७—इस तौर से सतगुरु स्वरूप में प्रेम और प्रीति लगाने से बहुत जल्द प्रेमी का बंधन बाहर के रूपों से ढीला और कम हो जाता है और अंतर में चढ़ाई निज रूप से चल कर मिलने के निमित्त आसान हो जाती है।

८८—लेकिन हर सूरत और हालत में कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके निज स्वरूप की (जो कि अथाह और अपार और अनंत और प्रेम और ज्ञान का भंडार है) महिमा और बड़ाई और मुख्यता भक्ति भाव की, अंतर और बाहर बरताव में, बदस्तूर जारी रहेगी, क्योंकि वही सतगुरु का निज स्वरूप है और सेवक के पहुँचने का निज धाम है, यानी वहीं जाकर उसकी भक्ति पूरन होगी और वहीं उसको पूरन और अमर आनंद प्राप्त होगा।

१—अरूपी कारख़ाना—रूप से रहित रचना।

भाग दसवाँ

क़िस्म दूसरी

जवाब बाज़ तर्कों का जो कोई कोई सतसंगी और दुनिया के लोग निस्बत बरतावे समाध और तसवीर राधास्वामी के करते हैं।

८९–कोई कोई सतसंगी और मूरत पूजा वाले ऐसी तर्क करते हैं कि राधास्वामी बाग़ में जो समाध और तसवीर पर हार फूल चढ़ाए जाते हैं और परशाद भेंट भी रक्खा जाता है, यह कार्रवाई मूरत पूजा वालों के मुआफ़िक़ है। सो यह कहन और समझ उनकी बिलकुल ग़लत है। यहाँ यह कार्रवाई निशान सिर्फ़ अदब और प्यार का है, क्योंकि जो नये सतसंगी राधास्वामी मत के आते हैं, वह बहुत शौक़ के साथ देखना चाहते हैं कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल का कैसा स्वरूप था और वे तसवीर का दर्शन करके बहुत ख़ुश होते हैं। और जो राधास्वामी दयाल के चरनों में भाव और प्यार के सबब से उमंग सेवा की उनके मन में पैदा होती है, तब वे हार और फूल और शीरीनी और नक़द वग़ैरह वहाँ पेशकश करते हैं यानी सन्मुख[1] रखते हैं। हार और फूल उलट कर चढ़ाने वालों को दे दिया जाता है और शीरीनी[2] साधुओं और सतसंगियों को वहीं तक़सीम कर दी जाती है और नक़द रुपया साधुओं और बाग़ के ख़र्च में आता है।

९०–आम तौर पर मन का ख़वास[3] है कि जिस किसी की परमार्थ में या दुनिया में बड़ाई और महिमा सुने, तो उसके दर्शनों की उमंग और चाह उठाता है। और जो वे उस वक़्त मौजूद न होवें, तो उनकी तसवीर या निशान के देखने को चाहता है और उसको देखकर बहुत मगन होता है।

१—सामने। २—मिठाई। ३—गुण।

९१–अब ख़्याल करो कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के दर्शनों की, या उनकी तसवीर या निशानों के देखने की, किस क़दर अभिलाषा[1] सतसंगी के दिल में (कि जिसने उनके निज स्वरूप का इष्ट धारण किया है और उनके निजधाम में पहुँचना चाहता है) पैदा होनी चाहिए। और जब वह इस इरादे से शहर आगरे में पहुँच कर राधास्वामी बाग़ में (जहाँ कि महाराज कुछ अरसे तक रहे) जाता है और उनकी यादगार समाध और तसवीर और पलँग और भजन करने की चौकी और खड़ाऊँ वग़ैरह का दर्शन करता है, उस वक्त उसका चित्त निहायत मगन होता है और उसके मन में भाव और प्यार ज़्यादा पैदा होता है। और जैसे कि कोई अपने प्यारे से मिलने को जावे, उस वक्त कोई चीज़ उम्दा या तोहफ़ा[2] उसके लायक़ ले जाता है, वैसे ही यह प्रेमी अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ भेंट और शीरीनी और हार फूल वग़ैरह पेश करता है। और जो उमंग ज़्यादा है, तो जिस क़दर बन सके उस मकान की और भी साधुओं की, जो वहाँ रात दिन रहते हैं, तन की सेवा करके अपना परमार्थी भाग बढ़ाता है।

९२–क्योंकि जब राधास्वामी दयाल सर्व समर्थ और कुल मालिक हैं और वक्त छोड़ने चोले के उन्होंने अपनी ज़बान मुबारक से फ़रमाया कि हम बराबर निगरानी सतसंगियों की रक्खेंगे, तो जो कोई उनके चरणों में भाव और प्यार लाता है या उनकी महिमा सुनकर उमंग के साथ कोई सेवा करता है, तो वे ज़रूर उस पर थोड़ी बहुत दया फ़रमावेंगे यानी उसको भक्ति और प्रेम दान देंगे।

९३–इस क़िस्म का बरताव मूरत पूजा में किसी तरह दाख़िल नहीं हो सकता। हर मुल्क में और हर शहर में हर एक अपने अपने प्यारे रिश्तेदार या दोस्त की यादगार या निशान या तसवीर को बारम्बार देखना चाहता है, और उसकी समाध या क़बर पर वक्तन् फ़वक्तन्[3] हार, फूल और उम्दा चीज़ खाने पीने की पेश करता है यानी चढ़ाता है।

१—इच्छा। २—सौग़ात। ३—जब तब।

फिर जो परमार्थी लोगों ने अपने मत के आचार्य की तसवीर या निशान या समाध के साथ ऐसी कार्रवाई करी तो क्या अचरज है और वह किस तरह मूरत पूजा में दाख़िल हो सकती है, ख़ासकर जब कि वहीं बाग़ में सतसंग मौजूद है, और मूरत पूजा वग़ैरह का बराबर खंडन होता है और भी बानी में जा बजा शब्द और सतगुरु वक्त की भक्ति का हुक्म है।

९४—लोग अपनी अनसमझता और अविचारता[1] से तर्क[2] और तान और ठठोली की बातें करते हैं। और जो वे ज़रा भी ग़ौर करें और दुनिया के और मन के हाल पर नज़र करें, तो उनको साफ़ मालूम होवेगा कि वह कार्रवाई जो महाराज राधास्वामी की समाध और तसवीर और निशानों वग़ैरह की निस्बत जारी है, वह ज़हूरा[3] और निशान सिर्फ़ प्रेम और भाव और अदब का है। और असली कार्रवाई परमार्थ की, यानी सतसंग और शब्द का अभ्यास और जो सतगुरु या साध मिल जावें, तो उनकी पूजा और सेवा, और राधास्वामी दयाल की बानी का समझ समझ कर पाठ, और उनके बचनों का मनन, बदस्तूर जारी है। फिर ऐसी जगह मूरत पूजा का कहाँ दख़ल हो सकता है?

९५—मालूम होवे कि एक मकान ख़ास कर राधास्वामी मत के आचार्य और प्रकट करने वाले सहज योग यानी सुरत शब्द अभ्यास के नाम से तैयार होना निहायत ज़रूर और मुनासिब मालूम हुआ, ताकि कुल सतसंगी हर एक देश के (जो कि राधास्वामी मत में शामिल होवें) एक जगह ख़ास पर यानी सदर मुक़ाम जहाँ कि राधास्वामी दयाल प्रगट हुए, किसी वक्त मुअय्यना[4] पर जमा होकर आपस में मिलते रहें और एक दूसरे की हालत प्रेम और भक्ति और अभ्यास की देखकर परस्पर फ़ायदा उठावें और राधास्वामी मत के ताल्लुक़[5] जो किसी को कुछ दरियाफ़्त करना या कहना होवे, वह एक जगह बैठकर उसका तज़किरा[6] करें। और अपनी अपनी आज़मायश और तजरुबे

१—नासमझी। २—ऐतराज़। ३—प्रकट करने वाला। ४—निश्चित। ५—संबंध में। ६—ज़िक्र।

का हाल थोड़ा बहुत मुनासिब तौर पर ज़ाहिर करके, एक दूसरे की प्रीति और प्रतीति बढ़ावें और आपस में मुहब्बत और इतिफ़ाक़[1] परमार्थी भाईचारे का पैदा होवे। और सब कोई अपने अपने मुआफ़िक़ इस भारी और सहज और अनउपमा जोग मत और अभ्यास के प्रकाश करने यानी अधिकारी जीवों के समझाने बुझाने में मदद देवे। और ऐसा मकान सिवाय राधास्वामी बाग़ के, जहाँ राधास्वामी दयाल कुछ अरसे तक आप रहे और वहीं उनकी समाध बतौर यादगार बनाई गई है और उनकी तसवीर और निशानात वग़ैरह मौजूद हैं, दूसरा नहीं हो सकता।

९६–इस वास्ते मुनासिब है कि कुल सतसंगी वक्त़ मेले के (जो बिलफ़ेल[2] साल भर में एक मरतबा होता है) या दो साल में एक मरतबा या साल भर में चंद बार, जब जब जिसको मौक़ा मिले, आगरे में आकर ज़रूर दर्शन समाध व तसवीर व निशान वग़ैरह का करें और सतसंग में, जो हर रोज़ जारी है, शामिल होकर अपने संशय और भर्म दूर करावें, और प्रीति और प्रतीति बढ़ावें और अभ्यास में मदद लेवें, क्योंकि बग़ैर सतसंग के अहंकार और मूर्खता और बिपरीत[3] दूर नहीं हो सकते, और न अंतर अभ्यास में जैसा कि चाहिए तरक़्क़ी मुमकिन है और न आपस में हर मुल्क और शहर के सतसंगियों में भाव और प्यार पैदा हो सकता है।

भाग दसवाँ

क़िस्म तीसरी

बाज़े सतसंगियों की अनजानता की बोल चाल और समझौती का वर्णन और उनको नसीहत।

९७–ऐसे सतसंगी कि जो संत सतगुरु से मिलें, और उनके चरनों में थोड़ी बहुत पहचान करके उनका भाव और प्यार आवे बहुत कम

१—मेल। २—इस वक्त़। ३—विरोध।

होंगे। और जो उनमें से कोई ऐसा कहें या ख़्याल करें कि हमको सतगुरु वक्त़ मिल गए और अब कोई ज़रूरत किसी के मानने की नहीं रही, यह कहन उनकी अनसमझता की है। क्योंकि जब वह पहले सतसंग में आए और उपदेश लिया, उस वक्त़ तो उनको सतगुरु में वैसा भाव (कि जो सतसंग और अभ्यास करके कोई दिन में पैदा हुआ) नहीं था, और उस वक्त़ वे कुल मालिक राधास्वामी दयाल के निज स्वरूप में, जो कि अपार और अनन्त है, भाव और प्यार लाकर राधास्वामी मत में शामिल हुए।

फिर रफ़्ता रफ़्ता सतसंग और अभ्यास करके और घट में परचे पाकर उनकी समझ बढ़ी, यानी सतगुरु को राधास्वामी दयाल का निज पुत्र और मंज़ूर नज़र यानी प्यारा मानने लगे। और किसी किसी ने ऐसी समझ धारण की कि सतगुरु राधास्वामी दयाल के देह स्वरूप हैं और राधास्वामी पद उनका निज रूप और निज धाम है। इन दोनों सूरतों में निज स्वरूप राधास्वामी दयाल की महिमा और बड़ाई बदस्तूर रही, यानी वह पिता और भंडार स्वरूप हुआ और देह रूप निज धार और पुत्र स्वरूप हुआ। फिर जब कि इन दोनों स्वरूप की महिमा और बड़ाई सतसंगी के हृदय में समझ बूझ के साथ बस गई और जो वह समझदार और विचारवान् है, तो राधास्वामी दयाल के उस देह स्वरूप की, जो उन्होंने प्रथम धारण करके राधास्वामी मत और उसकी नवीन[1] और सहज जुगत को प्रगट किया, वैसी ही महिमा और बड़ाई समझकर प्रीति भाव उनके चरणों में लावेगा जैसा कि अपने वक्त़ के सतगुरु के देह स्वरूप में। लेकिन जोकि वह स्वरूप उसके सामने प्रगट नहीं है यानी गुप्त हो गया, इस वास्ते जो उसकी यादगार और बानी बचन या निशान या तसवीर मौजूद है, तो उसको उसी नज़र, भाव और अदब और प्यार से देखेगा और उसके साथ वैसा ही बरताव करेगा जैसे कि वक्त़ के सतगुरु की तसवीर और उनके बैठने और पहनने और बरतने की चीज़ों से बरतता है, क्योंकि निज

१—नई।

रूप दोनों देह स्वरूपों का एक ही है और वह अमर और अजर और सदा एकरस मौजूद है। देह स्वरूप जुदा जुदा होंगे पर जो शब्द कि उनमें व्यापक है, वह हमेशा एक ही है। फिर जो किसी देह स्वरूप का कोई निरादर करेगा या उसको ओछा समझेगा, तो गोया उसने निज रूप का निरादर किया और उस को ओछा समझा। फिर ऐसी समझ से दूसरा देह स्वरूप जिस में वही निज रूप यानी शब्द मौजूद है, कैसे उस से राज़ी होगा ?

ऐसी समझ और ऐसा बरताव ज़ाहिर करता है कि उस सतसंगी को पहचान और समझ संत सतगुरु और उनके निज रूप की जैसा कि चाहिए बिलकुल नहीं आई, नहीं तो वह एक देह स्वरूप का आदर और दूसरे देह स्वरूप का निरादर न करता, यानी दोनों स्वरूप में किसी तरह का भेद और फ़र्क़ न समझता। बल्कि जोकि संत सतगुरु बनाए हुए उस आदि स्वरूप या भेजे हुए निज रूप के हैं, तो वह आदि देह स्वरूप और निज स्वरूप दोनों पिता के स्वरूप हुए और मौजूदा स्वरूप संत सतगुरु का पुत्र रूप हुआ, तो हर सूरत और हालत में पिता रूप की महिमा और आदर ज़्यादा चाहिए न कि कम। और जो कोई एकताई समझे, तो भी दोनों में भाव और प्यार बराबर होना चाहिए। और जो कोई कमी करे, तो उसकी समझ ओछी और ग़लत है।

९८–यह बात सही है कि ऐसा बरताव, जैसा कि ऊपर लिखा गया, वक्त मौजूदगी दोनों स्वरूप के हो सकता है और जब कि कोई स्वरूप गुप्त हो गया, तब उसके साथ बरताव भी बंद हो गया। लेकिन उस स्वरूप की तसवीर या बानी बचन या कोई यादगार में वैसा ही बरताव प्यार और अदब के साथ किया जावेगा, जैसा कि मौजूदा सतगुरु की तसवीर और बानी बचन और कारआमद चीज़ों में किया जाता है।

९९–निज रूप की महिमा और बड़ाई भारी है और हमेशा एक सी रहेगी, और कुल जीव पहले उसी में प्रीति और प्रतीति लाकर

राधास्वामी मत में शामिल होवेंगे और पीछे आहिस्ता आहिस्ता थोड़ी बहुत पहचान सतगुरु स्वरूप की करते जावेंगे और उसी मुआफ़िक़ उसमें भाव और प्यार लाते जावेंगे। और जब तक कि पूरी पहचान नहीं आवेगी, तब तक पूरी प्रीति और प्रतीति बदस्तूर निज स्वरूप की की जावेगी। और जोकि कुल सतसंगियों का निशाना और पहुँचने और विश्राम करने का धाम वही निज स्वरूप यानी राधास्वामी पद है, इस वास्ते उसकी प्रीति और प्रतीति कभी घट नहीं सकती। और सतगुरु रूप की प्रीति और प्रतीति में मुआफ़िक़ हर एक सतसंगी की समझ बूझ और पहचान और परचों के हमेशा फ़र्क़ रहेगा, यानी कुल सतसंगियों की प्रीति प्रतीति में बहुत से दर्जे होंगे। फिर जो कोई अपनी प्रीति प्रतीति को सिर्फ़ सतगुरु के स्वरूप पर ख़त्म करे, यह मुनासिब नहीं है। निज स्वरूप और देह स्वरूप का भेद हमेशा रहेगा। और शब्द स्वरूप की महिमा देह स्वरूप से ज़्यादा समझनी चाहिए। और जब कोई पूरी समझ लेकर इन दोनों की एकताई करे, तो भी उसकी बोल चाल ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें किसी स्वरूप का निरादर या ओछापन न पाया जावे। और मुख्यता हर हाल में शब्द स्वरूप की रहेगी, पर जब तक कि देह स्वरूप मौजूद है ज़ाहिर में उसकी मुख्यता और अंतर में शब्द स्वरूप और भी देह स्वरूप की मुख्यता (जहाँ तक कि देह स्वरूप की पहुँच है) करे तो दुरुस्त है, जैसा कि इस शब्द में राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है—

शब्द

गुरू मोहि अपना रूप दिखाओ ॥ टेक ॥

यह तो रूप धरा तुम सरगुन। जीव उबार कराओ ॥ १ ॥
रूप तुम्हारा अगम अपारा। सोई अब दरसाओ ॥ २ ॥
देखूँ रूप मगन होय बैठूँ। अभय दान दिलवाओ ॥ ३ ॥
यह भी रूप पियारा मोको। इसही से उसको समझाओ ॥ ४ ॥
बिन इस रूप काज नहिं होई। क्योंकर वाहि लखाओ ॥ ५ ॥
ताते महिमा भारी इसकी। पर वह भी लखवाओ ॥ ६ ॥
वह तो रूप सदा तुम धारो। याते जीव जगाओ ॥ ७ ॥

यह भी भेद सुना मैं तुमसे। सुरत शब्द मारग नित गाओ ॥ ८ ॥
शब्द रूप जो रूप तुम्हारा। वामें भी अब सुरत पठाओ ॥ ९ ॥
डरता रहूँ मौत और दुख से। निर्भय कर अब मोहि छुड़ाओ ॥१०॥
दीन दयाल जीव हितकारी। राधास्वामी काज बनाओ ॥ ११ ॥

१००—जोकि पूरे प्रेमी सतसंगी, जिनको वक्त़ के संत सतगुरु स्वरूप में पूरा भाव आया है, बहुत कम होंगे और बाक़ी दर्जे बदर्जे अपनी अपनी प्रतीति के मुआफ़िक़ सतगुरु में भाव और प्यार लावेंगे और बाज़े नवीन सतसंगी उनको सिर्फ़ उपदेशकर्त्ता और साधना करने वाले ख़्याल करके उसी मुआफ़िक़ उनको बड़ा मानेंगे और पूरा भाव निज स्वरूप यानी राधास्वामी दयाल के चरनों में लावेंगे, इस वास्ते अव्वल दर्जे के सतसंगियों को मुनासिब और लाज़िम है कि अपनी बोलचाल और ज़ाहिरी बरताव, निस्बत राधास्वामी दयाल के आदि स्वरूप और उसके निशान और यादगार वग़ैरह और वक्त़ के सतगुरु के स्वरूप और सामान वग़ैरह में इस तौर पर दुरुस्त रक्खें जैसा कि ऊपर बयान हुआ है। और एकअंगीपन की बातें हर एक के रूबरू न करें और ऐसा एकअंगीपन इख़्तियार न करें जिसमें किसी स्वरूप का निरादर या ओछापन पाया जावे।

अपने वक्त़ के सतगुरु स्वरूप में उनको इख़्तियार है, चाहे जिस क़दर भाव और प्यार लावें और उमंग के वक्त़ चाहे जैसी सेवा करें। मगर इस क़दर होशियारी रक्खें कि किसी हालत और किसी सूरत में आदि देह स्वरूप या निज स्वरूप राधास्वामी दयाल के आदर भाव और महिमा में फ़र्क़ न आवे और न किसी तरह पर उनका निरादर ज़ाहिरी बरताव में पाया जावे। इसमें उन सतसंगियों को निज स्वरूप और आदि देह स्वरूप और मौजूदा सतगुरु स्वरूप की दया और मेहर बराबर प्राप्त होगी। नहीं तो बेपरवाही और बेअदबी की बोल चाल और बरताव में वह किसी न किसी स्वरूप की दया से महरूम रहेंगे, और उनकी भक्ति में भी थोड़ा बहुत ख़लल पड़ेगा और समझ बूझ भी उनकी किसी क़दर ओछी और नादुरुस्त रहेगी।

१०१—ख़ुलासा यह है कि सच्चे प्रेमी सतसंगी और कुल सतसंगियों को, चाहे वे जिस दर्जे के होवें, आपस में मेल मिलाप रखना चाहिये। और सबको एक ही इष्ट कुल मालिक राधास्वामी दयाल के निज स्वरूप का धारण करना मुनासिब है। और सबको वक्त के संत सतगुरु में अपनी अपनी समझ और प्रतीति के मुआफ़िक़ भाव और प्यार और अदब के साथ बरताव करना चाहिए। और जो गृहस्त या विरक्त सतसंगी उपदेशक होवें (बशर्ते कि वे ख़ुदमतलबी और मानी और अहंकारी न हो जावें), उनमें भी, मुआफ़िक़ हर एक के दर्जे के, प्रीति भाव के साथ बरताव चाहिए, क्योंकि जो सबका इष्ट एक ही यानी राधास्वामी दयाल हैं और सबका निज घर भी एक ही यानी राधास्वामी धाम है और सबका असली उपदेशक वही बानी और बचन राधास्वामी दयाल के हैं, तो सबका आपस में इत्तिफ़ाक़[1] और दिली मुहब्बत और प्यार होना चाहिए।

ज़ाहिरी उपदेश चाहे जिससे हासिल किया होवे, पर हिदायत और तालीम और जुगत और अभ्यास तो सब का एक ही होगा। इस वास्ते कुल उपदेशक और उपदेशियों को राधास्वामी दयाल के दरबार में प्यार भाव के साथ मिलना चाहिए। और इसी तरह से जहाँ कहीं जिस किसी का इत्तिफ़ाक़ से[2] मेला हो जावे तो हर एक सतसंगी को मुनासिब है कि एक दूसरे के साथ मुहब्बत से पेश आवे और परमार्थी भाईचारे के मुआफ़िक़ बरताव करे। और ईर्षा और बिरोध और ख़ुदमतलबी को अपने मन में दख़ल न देवे, क्योंकि यह दस्तूर और आदत संसारी जीवों की है। और सच्चे परमार्थियों का स्वभाव उनसे जुदा होना चाहिए, यानी आम तौर पर उनके मन में सफ़ाई और प्यार और दया सतसंगी भाइयों पर ख़ास कर और कुल जीवों की तरफ़ आम तौर से, बग़ैर लिहाज़ क़ौम और मज़हब और देश और रंग रूप के, जारी होनी चाहिए।

१—मेल। २—इत्तिफ़ाक़ से—अचानक।

भाग ग्यारहवाँ

वर्णन क़ैफ़ियत कुल मालिक के औतार स्वरूप की और उसकी ज़रूरत।

१०२—बाज़े अपनी अनजानता और ओछी समझ के मुआफ़िक़ ख़्याल करते हैं कि औतार स्वरूप कुल मालिक नहीं हो सकता या यह कि कुल मालिक देह स्वरूप में नहीं समा सकता। यह समझ उनकी दुरुस्त नहीं है जैसा कि इस दृष्टान्त से ज़ाहिर होता है। दृष्टान्त—जिस वक़्त कि समुद्र में ज्वारभाटा आता है, यानी उसकी लहर उठकर समुद्र से सौ सौ कोस तक बराह दरिया[1] बढ़ती चली जाती है और कुछ अरसे ठहर कर फिर समुद्र में लौट आती है, तो जिस क़दर देर तक वह लहर सौ कोस में फैली रही, वह समुद्र की लहर कहलाती है, यानी ख़ुद समुद्र वहाँ मौजूद है और अपने समुद्र रूप से (जोकि बहुत बड़े हिस्से ज़मीन को घेरे हुए है) जुदा नहीं और सिमट कर फिर वही समुद्र रूप हो जाती है। इसी तरह औतार स्वरूप कुल मालिक की लहर है कि जो उस अपार सिंध स्वरूप चैतन्य से निकल कर और ब्रह्मांड में होकर पिंड में आकर ठहरी। और जिस क़दर अरसे तक उसका पिंड में ठहराव रहा, वह लहर अपने सिंध स्वरूप से जुदा नहीं हुई और रात दिन में चंद बार (अभ्यास के वक़्त) सिमट कर सिंध स्वरूप में उलटकर समा जाती है और फिर उत्थान करके और ब्रह्मांड में रवाँ[2] होकर पिंड में ठहर जाती है। इस हालत में यह लहर रूप कभी पिंड के मुआफ़िक़ महदूद नहीं होता, हमेशा सिंध के साथ उसका मेल और सिंध के मुआफ़िक़ अपार और अनन्त रहता है।

१०३—इस दृष्टान्त से साफ़ ज़ाहिर है कि लोगों की समझ निस्बत महदूद[3] होने कुल मालिक सिंध स्वरूप के, बसबब फैलने यानी उतर आने उसकी लहर के पिंड में, सही और दुरुस्त नहीं है। यह

१—बराह दरिया—नदी में होकर। २—जारी। ३—सीमित।

कलाम[1] आम जीवों की निस्बत सही हो सकता है कि उनकी धार जो सिंध से रवाँ होकर पिंड में आकर ठहरी, वह अपने आप से उलट नहीं सकती यानी सिंध स्वरूप से मिलकर सिंध रूप नहीं होती। लेकिन औतार स्वरूप की निस्बत ऐसा ख़्याल करना ग़लत है क्योंकि उनके सब पट खुले होते हैं और छिन भर में वह लहर या धारा सिंध स्वरूप, और कभी पिंड में धार रूप, होती रहती है और कभी सिंध से जुदा नहीं होती, यानी उसके और सिंध के बीच में कोई पट या परदा हायल नहीं होता है।

१०४–ऐसा औतार स्वरूप जब कभी प्रगट हुआ, वह गोया कुल मालिक ने आप नर रूप धारण किया। फिर उस स्वरूप की और कुल मालिक की महिमा बराबर है। लेकिन इस औतार स्वरूप की पहचान कठिन है। जीवों की क्या ताक़त है कि वे अपनी महदूद और ओछी समझ से इस औतार स्वरूप की गति मति जान सकें। यह पहचान थोड़ी बहुत उसको आवेगी कि जो उनका कोई काल प्रीति भाव के साथ संग करेगा और उनकी जुगती का उनसे उपदेश लेकर, उसकी थोड़ी बहुत अंतर में कमाई करके, उनकी क़ुदरत और दया की अपने घट में परख करेगा। या उसको थोड़ी बहुत पहचान आवेगी कि जिसको वे अपनी दया से आप बख़्शिश फ़रमावें।

आम तौर पर वे देह में बैठकर जीवों के मुआफ़िक़ बरताव करते हैं और अपनी क़ुदरत और ताक़त का मुतलक़[2] दिखावा नहीं करते और न किसी को जताते हैं कि वे कौन हैं। फिर जीवों की क्या ताक़त कि उनकी गति को जान सकें।

१०५–जो कोई कहे कि मालिक को औतार लेने की क्या ज़रूरत और जो उसने औतार लिया यानी पिंड में आन समाया, तो क्या निज स्थान ख़ाली हो गया।

१—कथन। २—क़तई।

जवाब इसका यह है कि ज्वार भाटे के वक्त जब समुद्र लहर रूप होकर सौ सौ कोस तक अपने किनारे से दूर चला गया, तो क्या उसका समुद्र रूप ख़ाली हो गया या कहीं जाता रहा। नहीं, वह दोनों जगह एक ही वक्त में बराबर मौजूद है, उसका निज रूप न घटा न बढ़ा। इसी तरह औतार स्वरूप का हाल समझना चाहिए कि उसका दोनों हालत में सिंध स्वरूप यकसाँ[1] क़ायम रहता है।

१०६—और औतार स्वरूप की ज़रूरत की वजह यह है कि कुल मालिक का निज भेद कोई नहीं जान सकता जब तक कि वह आप न जनावे। और जो भक्ति रीति कि उस मालिक ने संत रूप धर कर आप जारी फ़रमाई उससे भी सब जीव बेख़बर हैं, वह रीति भी वह आप ही जारी फ़रमाता है। और निज रूप से यह कार्रवाई दुरुस्त नहीं हो सकती, यानी उसकी अन्तरी हिदायत और उपदेश को कोई नहीं सुन सकता है या समझ सकता है, और न जीव को यह ख़बर पड़ सकती है कि अन्तर में कौन बोलता है और न किसी बचन की (बग़ैर पहले उपदेश और हिदायत ज़ाहिरी स्वरूप से पाने के) समझ आ सकती है, क्योंकि जितने मत दुनिया में जारी हैं उनके आचार्य टटोलवाँ चले, यानी निज भेद से उस स्थान और उसके धनी के, जहाँ तक कि उनकी पहुँच हुई, वाक़िफ़ न थे, दुनिया में पैदा होकर और भेदी यानी गुरू से मिलकर उनको ख़बर पड़ी, और फिर अभ्यास करके और मन माया के बहुत से झकोले खाकर उनको उस पद की प्राप्ति हुई। तब उन्होंने उसी पद की भक्ति और पूजा या उसके ज्ञान यानी समझ बूझ का अपने साथियों को, जिन्होंने उनका बचन माना, उपदेश किया। और कुल मालिक राधास्वामी दयाल का देश और भेद किसी ने न जाना, क्योंकि सब मतों के आचार्य किसी न किसी स्थान पर माया की हद में रहे। और सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का भेद और देश का हाल और वहाँ पहुँचने का तरीक़ा कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने आप इस दुनिया में औतार

१—एक जैसा।

स्वरूप धर कर प्रकट किया और जिन जीवों ने उनका बचन माना, उनको अपने चरनों की भक्ति की रीति समझाई और उसकी कार्रवाई आप करवाई और अपने चरनों के प्रेम की दात आप बख़्शश करी।

१०७–जीवों की सुरत यानी रूह इस क़दर पिंड में नीचे उतर गई है कि वे कुल मालिक के निज रूप का बचन नहीं सुन सकते और न समझ सकते हैं और जो फ़र्ज़ किया कि किसी तरह से कोई बचन उतर कर सुनाया भी जावे, तो उसमें अनेक तरह के संशय और भरम पैदा करके उसकी प्रतीति नहीं करते और न उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करने को तैयार हो सकते हैं। इस वास्ते जब कि कुल मालिक ने देखा कि सब जीव माया के घेर में कहीं न कहीं अटक रहे और निज घर का भेद न पाकर उससे बिलकुल बेख़बर रहे, और वहाँ कोई न जा सका और न रास्ता वहाँ पहुँचने का किसी को मालूम पड़ा, तब कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने अति दया करके आप संत रूप धारण किया और अपना निज भेद और निज घर में पहुँचने का तरीक़ा आप प्रगट किया। अब जीवों को चाहिए कि राधास्वामी दयाल के बानी और बचन को अच्छी तरह से समझ कर मानें और उसके मुआफ़िक़ अभ्यास शुरू करें और चरनों में नित्य सतसंग और अभ्यास करके प्रीति और प्रतीति बढ़ाते रहें। तो राधास्वामी दयाल की दया से एक दिन उनका कारज दुरुस्त बन जावेगा, यानी माया के घेर से निकल कर निज घर यानी दयाल देश में बासा पावेंगे और अमर आनन्द को प्राप्त होवेंगे। और जो ऐसा न करेंगे तो माया के देश में बारम्बार किसी न किसी क़िस्म की देह धर कर दुख सुख भोगते रहेंगे और कभी सच्चा उद्धार उनका नहीं होगा, यानी दयाल देश में नहीं जाने पावेंगे और न पूरन और अमर आनंद को प्राप्त होंगे।

१०८–जिन जीवों को कि संत सतगुरु अपनी दया से सत्तपुरुष राधास्वामी देश में पहुँचावें, वह जीव फिर उलट कर इस देश नहीं आ सकते, क्योंकि वहाँ का आनंद और बिलास ऐसा गहरा और भारी

है कि वह उनसे छोड़ा नहीं जा सकता और फिर माया देश की तरफ़ उनकी तवज्जह नहीं होती।

१०९—जो कोई पूछे कि ब्रह्म पद का भी औतार स्वरूप प्रगट होता है या नहीं, तो जवाब उसका यह है कि हाँ होता है, क्योंकि जो ऐसा न होता तो ब्रह्म पद का भी भेद पूरा पूरा किसी को मालूम न होता। जब जब ब्रह्म ने औतार जोगी और जोगेश्वर रूप का धारण किया, तब तब उस पद का भेद और उस रचना का हाल, जो उसके नीचे है, प्रगट किया और गुरुवाई की चाल चलाई। और मालूम होवे कि पूरन औतार ब्रह्म का कभी कभी होता है, पर कलाएँ उस मुक़ाम से अक्सर प्रगट होती रहती हैं और रचना की सम्हाल करती रहती हैं।

११०—और मालूम होवे कि संत अक्सर रचना में प्रगट होते रहते हैं, पर गुप्त रहते हैं। और जब तक कि राधास्वामी दयाल की मौज न होवे सतसंग खड़ा नहीं करते और न आम तौर पर उपदेश संत मत का करते हैं।

१११—संत सतगुरु को इख़्तियार है कि जिसको वे पसंद करें, सतसंग और भक्ति कराकर संत बना देवें। जिस पर ऐसी कृपा होवे वही बड़भागी है।

पुस्तकों का सूचीपत्र

ये पुस्तकें मैनेजर पब्लीकेशन्स, दयलाबाग़ (आगरा) से मिल सकती हैं

	नाम		मूल्य
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
१	सारबचन (पद्य)	हिन्दी	७.००
२	सारबचन (गद्य)	,,	३.००
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
३	राधास्वामी मत प्रकाश	अंगरेज़ी	१.५०
४	पिलग्रिम्स पाथ (हुज़ूर महाराज के पत्र)	,,	१.५०
५	राधास्वामी मत संदेश	हिन्दी	१.००
६	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
७	निज उपदेश	,,	१.००
८	प्रेम उपदेश	,,	१.००
९	सार उपदेश	,,	१.२५
१०	प्रश्नोत्तर	,,	१.००
११	जुगत प्रकाश	,,	२.००
१२	प्रेमबानी भाग १	,,	५.००
१३	,, भाग २	,,	५.००
१४	,, भाग ३	हिन्दी	५.००
१५	,, भाग ४	,,	३.००
१६	प्रेमपत्र भाग १	,,	४.००
१७	,, भाग २	,,	४.००
	परम गुरु महाराज साहब रचित		
१८	डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ	अंगरेज़ी	५.००
	परम गुरु सरकार साहब रचित		
१९	प्रेम-समाचार	हिन्दी	१.२५
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में अनुवादित पुस्तकें		
२०	राधास्वामी मत प्रकाश (हुज़ूर महाराज रचित)	बंगला	१.२५
२१	अमृतबचन (परम गुरु महाराज साहब रचित पुस्तक 'डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ' का अनुवाद)	,,	३.००
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
२२	सारबचन	अंगरेज़ी	३.२५

	नाम		मूल्य
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
२३	प्रेम पत्र भाग १	अंगरेज़ी	६.००
२४	,, भाग २	,,	६.००
२५	,, भाग ३	,,	६.००
२६	,, भाग ४	,,	६.००
२७	,, भाग ५	,,	६.००
२८	,, भाग ६	,,	२.००
२९	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
३०	राधास्वामी मत संदेश	,,	१.००
	हुज़ूर साहबजी महाराज रचित		
३१	यथार्थ प्रकाश भाग १ (विशेष संस्करण)	,,	६.००
३२	,, (साधारण संस्करण)	,,	३.५०
३३	,, भाग २	,,	५.५०
३४	,, भाग ३ (प्रथम पुस्तक)	,,	५.५०
३५	,, (द्वितीय पुस्तक)	,,	५.००
३६	जिज्ञासा	,,	१.००
३७	राधास्वामी मत दर्शन	,,	१.००
३८	प्रेम संदेश	,,	१.००
३९	डिस्कोर्सेज भाग १ (सतसंग के उपदेश)	,,	४.००
४०	,, भाग २	,,	४.५०
४१	,, भाग ३	,,	३.२५
४२	जतन प्रकाश	,,	१.००
४३	सिलैक्शन्स फ्राम प्रेम सन्देश	,,	१.००
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में सम्पादित या लिखित पुस्तकें		
४४	फ़ोर लैटर्स (हुज़ूर सरकार साहब)	,,	१.००
४५	सिलवरी स्पीचेज़	,,	०.२५
४६	शब्द संग्रह भाग १	हिन्दी	३.५०
४७	,, ,, भाग २	,,	४.००
४८	संत बानी संग्रह भाग १	,,	१.००
४९	संत बानी संग्रह भाग २	हिन्दी	१.२५
५०	रत्नावली	,,	१.००
५१	दयालबाग़ पैम्फ़लेट (छोटा)	अंगरेज़ी	०.५०